ॐ

भगवान् महावीर का दिव्य सन्देश

प्रथम-भाग

अनुवादक -

प्रसिद्ध वक्ता पण्डित, मुनि श्री १००८
श्री चौथमलजी महाराज

प्रकाशक -

श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति,
रतलाम.

तृतीयावृत्ति २००० } मूल्य ≈।।) सन १९३१ ई० { वीराब्द २४५७ वि० सं० १९८७

श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस,-रतलाम.

॥ श्री ॥

भगवान् महावीर का पूर्व परिचय।

—————○×○—————
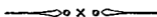
एक वह समय था, कि जिसका पल पल इस जगती तलके दीन-हीन-असहाय-और धर्म सेवक प्राणियों के लिए, पुनर्जन्म के समान भारवान् प्रतीत होता था; समस्त संसार में चारों ओर त्राहि त्राहि की आर्त्त पुकार मची हुई थी, और कोई किसी के दुख सुख में, शब्दों द्वारा योग-दान देने वाला तक, वहा दृष्टि-गोचर नहीं होता था। मानव समाज का बच्चा बच्चा तक अपने निजू स्वार्थ की बलि-वेदी पर उतराया हुआ था ;अपने खुद के मतलब ही में मस्त और रत था जिस तिस तरह से हो सके अपनी मनेच्छा की और स्वार्थ की परमोन्नति ही में, समाज के प्रत्येक व्यक्ति का विशेषत्व और मुख्यो-द्देश्य बन चुका था। देवी और देवताओं के सन्मुख, गूंगे और वाक् विहीन पशुओं और निर्बल नरों तक का, निर्दयता-पूर्वक बलिदान घर घर और गली गली किया जाना प्रत्येक नर, श्रेय कर और स्वर्गप्राप्ति का एक मात्र अनुपम और सीधा सच्चा उपाय समझने लग गया था; उपाय नहीं वरण स्वर्ग की तृष्णा से तृपित वे नर, वे धन के मद से अन्धे मानव-गण, उन मूक पशुओं और अबल आदमियों को प्राण नाश के भय से, घोर आक्रन्दन करते हुए भी, भूमिस्थ वेदियों की धधकती हुई

राम की आभा गति ही दर्शनीय थी। अन्त में, पूर्व मुहूर्त के पश्चात् ही, वाद हट अप्सराएँ नत-मस्तक हो कर अपने अपने स्थान की ओर चली गईं! अहा! कितना श्रेष्ठ संयम-शीलता थी! उस ललाम यौवन, तप और त्याग का कैसा अपूर्व सम्मिश्रण था!

भगवान् के भव्य तनु में, प्रत्येक अंगों के जोड़ों की जगह जगह, यौवन विराम के कारण निकल हुए, जो एक सौरभान्वित, चिकने और आर्द्र पदार्थ का जमाव हो रहा था, उस पर, पूरे चार मास तक, मधु-कर निकर मंडराते हुए, अपने क्रूर स्वभाव का परिचय देते रहे तथापि वे आत्मवीर, ज्यों के त्यों अटल और ध्यान-मग्न बने रहे। यह उनकी सहनशीलता का एक अनुपमेय उदाहरण था। ग्वालवालों ने लाहेरी कीलों आदि से उनके कर्णों और तनु को जगह जगह छेद देना, अपना कौतूहल मय कर्तव्य मान लिया था। तब भी भगवान् पूर्ववत् ही अचल और अटल बने रहे। पाठको! देखा आपने, भगवान की आदर्श क्षमा का समुज्वल और निर्मल नमूना? उन्होंने अपनी अल्पायु ही में, जिन सङ्ख्यातीत कर्म-दलों का एकाकी क्षय कर लिया था, वह उनकी अपूर्व शक्ति ही का द्योतक था। ऐसे भगवान के शरीर के त्याग और शूरता की गाथा का साँगोपाँग वर्णन करना, मानवी शक्तियों से परे की बात है, जिन की समानता असंगत है,

सहनशीलता अनुपमेय है, आत्म-बल अद्वितीय है, और वीरता अलौकिक शौर्य-सम्पन्न है।

प्रिय पाठको ! हम उन्हीं भगवान् के दिव्य संदेश को आप तक, आपकी आजकी भाषा में पहुचाने की धृष्टता कर रहे हैं। वह भगवान् हमारी आत्मा को अमर बल दे, जिससे, हम उन के उन दिव्य सन्देशों को, यथावत् संसार के आबाल-वृद्ध सभी के पास पहुचाने में सामर्थ्यवान् और प्रयत्न शील हो सकें।

सेक्रेटरी,
श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति,
रतलाम. (मालवा)

आगी में स्वाह कर देना, अपने धर्म की चरम-सीमा मान रहे थे, और उन बलि जाने वाले पशुओं तथा नरों के निकले हुए गर्मागर्म रक्त से स्नान करके इस भारतमाता का विस्तृत भू-भाग, एक ही समय में रक्त रञ्जित हो उठा था, तथा अत्याचारों की बढ़ती हुई मात्रा से हमारी यह भारत वसुन्धरा थरथरा दहल उठी थी, ऐसे ही सङ्कट भरे गाढ़ समय में किसी महत्व शाली का, प्राणीमात्र के लाभार्थ, इस अवनी तल में अवतीर्ण होना सम्भव था। बस, पाठको, उस महत्वशाली के रूपमें, जगत्-प्रभु, आज से लगभग २५४६ वर्ष के पूर्व, दशवें स्वर्ग से, चत्रवर क्षत्रिय राजेन्द्र सिद्धार्थ के यहां, कुण्ड गाव में, परम सौभाग्य शाली माता पिता के पुण्य फल स्वरूप, आदर्श जननी त्रिशला के उदर में आये। तत्पश्चात् चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन, शुभ मुहूर्त में, भगवान् महावीर के नाम से उनका जन्म होता है। फिर, क्या था, समस्त मानव गण और देवलोग परम हर्षायमान् होकर, बड़े समारोह के साथ उनका जन्मोत्सव मनाते हैं। पाठक वृन्द ! उनकी शैशवावस्था उनकी किशोरावस्था की सुन्दरता का सुखदायक सदन और मनोहारिता की मनोमुग्ध मञ्जूषा था। यही नहीं, उनका यौवन भी एक साधारण यौवन नहीं था, उनकी लावण्यता को देख, कनकर नाम धारी ऐसा था, जो उद्रेक करने के लिए,

अपने आपको सर्व प्रकार से विसरा कर, उनके उस रूप-राशि कलेवर पर तन-मयस्क न हो पड़ता। सज्जनो! इतना कान्त कलेवर होते हुए भी, यौवन प्रकाश की उस अनुपम छटा में, वासना विशूचिका के चाञ्चल्य-भावका आभास तक उस में नहीं था, प्रकृतिका मतवालापन भी वहा अपना मान गवाये, नीचा सिर किये बैठा था, और वलासिक उच्छृङ्खलता युक्त आकाङ्क्षा के आगमन की भी आशङ्का वहा दृष्टि गोचर नहीं होती थी। भगवान् का वह यौवन-मान-सरोवर, प्रसरित शारदीय सौरभवान् प्रभात की भांति शान्त और सुस्थिर था। उस में उस शान्ति और सुस्थिरता की सुखदायक शोभा का ललित विकाश, अतिही दर्शनीय और नयनाभिराम था।

इसी अति विस्तृत विश्व-वारिधि को, जो विकट विषय वासनाओं की उत्ताल तरङ्ग मालाओं से तरङ्गाय-मान है-उद्वेलित है, और जिसका प्रत्येक कोना कोना अनेकों प्रकार के पाप और ताप के प्रलोभन रूपी महान् विकराल जन्तुओं से, समुचित रूपेण, समाकीर्ण है, तथा, जहा अनेकों तामसी प्रवृत्तिया, अपना भीषण वड़वानल का रूप धारण कर, दिन रात प्रयाण कर रही है, जिन के कारण, इस विश्व-वारिधि में से, सत्यानाशक स्वार्थ का धूम्र सदा उठताही रहता है, इसी अगम और अगाध विश्व-वारिधि को, जगत् नायक ने, पार करना

और अगाध विश्व वारिधि को, जगत् नायक न, पार करना अपना परम लक्ष्य और प्रधान कर्तव्य माना। तथा, त्याग, तपस्या और उदारता क अगणित पातों द्वारा, अपने जीवन के तीस वर्षों के समय में, अपने सुविशाल राज्य और उस के अतुलनीय वैभव का उतराई के रूप में देकर इसे उस विश्व-वारिधि को, उन्हों ने पार किया।

भगवान् महावीर अहिंसा के अलौकिक अवतार, निःस्वार्थ प्रेम की प्राणमयी प्रतिमा, एवं लोक सेवा के अनुपम तथा सजीव साधन थे। उनका पावन चरित्र, स्वर्गीय गुणों का सुन्दर कोष था, और व महामना अपने समय के सर्व श्रेष्ट पुरुष रत्न थे। उन्होंने अपनी निःस्वार्थ सेवा, तपोयुक्त साधना, आदर्श त्याग, विमल भक्ति और अनन्य प्रेम क प्रकाश स, समस्त ससार को चमत्कृत एव चकाचौंध कर दिया था। तथा, वही ज्योति-विकीर्ण-कारी प्रकाश की चकाचौंध, ससार को इस अतीत काल के पश्चात्, आज भी, उसी प्रकार प्रकाशित कर रही है।

भगवान् महावीर मुक्ति के अति अगम मार्ग का अनुसन्धान करते हुए, अपने कर्तव्य के पथ पर अहर्निशि अटल बने रहे, वे समय असमय, कई विघ्न-बाधाओं के आते रहने पर, तिल-मात्र भी, अपन कर्तव्य के कठिनतम " विचलित नहीं हुए। वे आगतुक आप-

दाओं को अपने भविष्योज्वलता का भव्य साधन समझ कर, सदा अपूर्व शान्ति, गुरु गम्भीरता, और मत्साहस पूर्वक, उन का सामना करते हुए, घोर तपश्चर्या और प्रबल साधना में आठों याम रत होते रहे ।

जिस समय एक ओर त्रैलोक्य पूजनीय, इस अटल अवस्था की अविकल आराधना में तल्लीन थे, उसी समय दूसरी ओर अनेक देवाङ्गनाएँ, वसन्तादि अपने सहचरों के साथ, शीतल जल में स्नान कर, अपने कान्त कलेवरों को नाना प्रकार के आभरणों से अलंकृत बना, एवं शतश' स्वर्गीय शृंगारों से स ा, तथा सब प्रकार से बन-ठन कर, भगवान् को उन की आराधना के आगम मार्ग से च्युत करने के अनेक उपचारों को साथ लेकर वहा आ उपस्थित हुईं । फिर वे अपने विशाल और विकसित नेत्रों की तिरछी चितवन पैनी शरावली और कामोद्दीपक अपने अङ्गोपाङ्गों के हाव भावों से उन के मन को डिगाने का भगीरथ प्रयत्न करने लगीं । किन्तु, पाठको, कहा तो आत्मिक बल से सम्पन्न अतुलित बल शाली वह धीर-वीर, और कहा उन के मन को डिगाने वाले वे ऐहिक सुख-साधन और वैलासिक आयोजन ! भगवान् के कान्त कलेवर की नयनाभिराम श्री को निहारते ही अप्सराओं की, आपाद-मस्तक पराजय हुई । उस समय उस विजयी वीर के काम-विकार से रहित प्रत्येक रोम

रोम की आभा अति ही दर्शनीय थी। अन्त में, कुछ मुहूर्त के पश्चात् ही, आठ कर अप्सराएं नत-मस्तक हो कर अपने अपने स्थान की ओर चली गईं! अहा! कितनी श्रेष्ठ संयम-शीलता थी! उस ललाम यौवन, तप और त्याग का कैसा अपूर्व सम्मिश्रण था!

भगवान् के भव्य तनु में, प्रत्येक अंगों के जोड़ों की जगह जगह, यौवन विकास के कारण निकले हुए, जो एक सौरभान्वित, चिकने और आर्द्र पदार्थ का जमाव हो रहा था, उस पर, पूरे चार मास तक, मधु-कर निकर मंडराते हुए, अपने क्रूर स्वभाव का परिचय देते रहे, तथापि वे आत्मवीर, ज्यों के त्यों अटल और ध्यान-मग्न बने रहे। यह उनकी सहनशीलता का एक अनुपमेय उदाहरण था। ग्वालवालों ने लोहे की कीलों आदि से उनके कर्णों और तनु को जगह जगह छेद देना, अपना कौतूहल मय कर्तव्य मान लिया था। तब भी भगवान् पूर्ववत् ही अचल और अटल बने रहे। पाठको! देखा आपने, भगवान् की आदर्श क्षमा का समुज्वल और निर्मल नमूना? उन्होंने अपनी अल्पायु ही में, जिन संख्यातीत कर्म-दलों का एकाकी क्षय कर लिया था, वह उनकी अपूर्व शक्ति ही का द्योतक था। ऐसे भगवान् के शरीर के त्याग और शूरता की गाथा का साँगोपाँग वर्णन करना, मानवी शक्तियों से परे की बात है, जिन की समानता असंगत है,

सहनशीलता अनुपमेय है, आत्म-बल अद्वितीय है, और वीरता अलौकिक शौर्य-सम्पन्न है।

प्रिय पाठको ! हम उन्हीं भगवान् के दिव्य संदेश को आप तक, आपकी आजकी भाषा में पहुचाने की धृष्टता कर रहे हैं। वह भगवान् हमारी आत्मा को अमर बल दे, जिससे, हम उन के उन दिव्य सन्देशों को, यथावत् ससार के आबाल-वृद्ध सभी के पास पहुचाने में सामर्थ्यवान् और प्रयत्न शील हो सकें।

सेक्रेटरी,
श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति,
रतलाम. (मालवा)

❀ आदर्श मुनि ❀

(प्रथम भाग)

इस ग्रन्थ के अन्दर प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनि श्री १००८ श्री चौथमलजी महाराज के किये हुए सामाजिक धार्मिक, सदाचार, दयामयी आदि कई महत्व पूर्ण कार्यों का दिग्दर्शन कराया गया है। साथ ही में जैन धर्म की प्राचीनता के विषय में अनेक विदेशी विद्वानों की सम्मतियों सहित व अन्य मत के ग्रन्थों के प्रमाणों से तुलना करते हुए अच्छा प्रकाश डाला गया है। पुस्तक अति उत्तम, उपयोगी एवम् हर एक के पढने योग्य है। इसकी तारीफ अनेक अखबार वालों और विद्वानों ने की है।

इस में राजा महाराजाओं के व सेठ साहुकारों के २० उम्दा आर्ट पेपर पर चित्र हैं पृष्ठ सख्या ४५० रेशमी जिल्द होते हुए भी मूल्य लागत मात्र से कम रू० १।) और राज सस्करण का मूल्य रू० २) रक्खा गया है डाक खर्च अलग होगा।

पता.—श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम।

* ॐ *

॥ सिद्धेभ्योनमः ॥

भगवान् महावीर का दिव्य सन्देश

हे सुखाभिलाषी मनुजों ! लोक है, अलोक है, जीव और जड है, पुण्य और पाप है, आश्रव और संवर है, निर्जरा, बन्ध, और मोक्ष है, शुभाशुभ कर्मों की वेदना है, अर्हन्त है, तीर्थंकर है, चक्रवर्ती है, बलदेव है वासुदेव है, नरक और नारकीय है, व स्वर्गीय देवता, तथा स्वर्ग सभी कुछ हैं, सिद्ध स्थान है और सिद्ध भी हैं, कषाय और कर्म हैं, कषाय और कर्मों से निर्मुक्त होने का उपाय भी है। इसी प्रकार प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशून्य, परापवाद्, रति-अरति, माया-मृषा, मिथ्यात्व-दर्शन-शल्य ये अठारह प्रकार के पाप भी है और इन पापों से निवृत्ती होने का उपाय भी है। मोक्ष के अभिलाषियों को यह स्मरण रखना चाहिये, कि सत्कर्मों का अच्छा और कुकर्मों का बुरा फल होता है। पाप पुण्य रूप बन्धन में पडकर, जीव जगत् में नाना प्रकार के सुख और दुख सदा भोगते रहते हैं। चाहे पाप हो, या पुण्य, फल दोनों का अवश्य होता है। पञ्च महाव्रत, अर्थात् अहिंसा सत्य, अस्तेय, [illegible] किञ्चन भाव, छट

भोजन, और निवृत्ति व्रत, जो सत्य धर्म कहलाते हैं, ये मेरे द्वारा, प्रतिपादित, प्रधान और शुद्ध माने गये हैं अस्तु। ये न्याय से परिपूर्ण हैं। संसार के सम्पर्ण चक्रों का अन्त करने वाला मुक्ति का यही मार्मिक पथ है, और यही सर्व दुखों का नाशक भी है।

सर्वज्ञ के मार्ग का पालन करता हुआ और उसके ऊपर अचल विश्वास रखता हुआ, जीव तत्त्वज्ञ होकर, सिद्ध स्थान को प्राप्त कर लेता है अर्थात वह कर्मों से मुक्त हो जाता है। या, उसकी कापायाग्नि के बुझ जाने पर, वह अपने सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक दुखों का शीघ्र ही अन्त कर, चिर-शान्ति के शीतल और श्रेष्ठ सुखों का स्वानुभव करता है।

यदि, निर्ग्रन्थ के वचनों के अनुसार, व्यवहार करते हुए, जीव के पुण्य की विशेष वृद्धि हो गई, तो वह मरण के पश्चात्, अनुत्तर विमान, आदि स्वर्ग को प्राप्त कर, वहा की देव योनियों में जन्म धारण करता है। और यों, वह उस स्वर्ग की महा ऋद्धियों और प्रधान सुखों को चिर-काल तक भोगता रहता है।

जो षट्-काय-जीवों का हनन करता है, तृष्णा को अतीव रूप से बढाता है, पञ्चेन्द्रिय जीवों का वध करता करवाता है, जो मासाहार करने वाला है, वह जीव मृत्यु के अनन्तर, नर्क का निरन्तर निवासी बनता है और

वहा, वह नाना प्रकार की यम-यातनाओं को चिरकाल तक सहता रहता है।

जो किसी के साथ कपट का व्यवहार करते हैं, कपट ही जिन प्राणीयों का खान-पान,-लेन-देन, तथा, आहार और विहार है, झूठ तो जिन्हें जन्म ही से प्यारा है, किसी के ठग लेने ही में जा अपनी ठकुराई समझते हैं ऐसे प्राणी, मरण के अनन्तर, तिर्यङ् (पशु पची, वा कीट-पतङ्ग) आदि आदि अधम योनियों में जन्म-धारण कर, और जन्म के अनेक प्रकार के जघन्य और कारुणिक कष्टों को सहते हैं।

वरञ्च, जो विनय-शील और कपट से कोसों दूर रहने वाले हैं, जिनके विचार उच्च और जीवन सदा सादा है, जिनके रग रग में दयाका सञ्चार है, जिन्होंने ईर्ष्या को ईति भीति मानकर त्याग दिया है, वे मरण के पश्चात् भी पुन' मनुष्य- जन्म ही ग्रहण करते हैं।

इसी प्रकार, जो अणुव्रत रुप धर्म का पालन करने वाला गृहस्थ और सराग सयम-धारी साधु तथा जो इच्छा के न रहते हुए भी शीतोष्णादि कष्टों को सहन करते हैं, और जो ज्ञान-रहित तपश्चरण करते हैं, वे यहा से मरण के पश्चात् स्वर्ग में जा और देवत्व को धारण कर, देवताओं के प्रधान सुखों का उपभोग करते है।

जितने भी नरक के जीव है, नारकीय नगण्य

नार्योंमे नित्यप्रति अनन्त प्रकार के दुख भोग भोगते हुए त्राहि त्राहि करते रहते हैं, तिर्यङ् योनियों में भी भूख प्यास, शीत-उष्ण, आदि आदि अनेकों प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुखों का, पग पग पर, दुर्दान्त सामना करना पड़ता है, फिर, मनुष्य जाति भी जन्म, जरा, जीवा मृत्यु, यश, अपयश, लाभ, हानि, काम, क्रोध, लोभ, मोह मद, मात्सर्य आदि आदि कई प्रबल शत्रुओं व अनेकों प्रकार की आधि-व्याधि करके ग्रसित हो रही है। जिन्हें देवता कहते हैं, और जो नन्दन-वन की सैर और सार पदार्थों का पान करते रहते हैं, फिर, जो अप्सराओं के गान का निरन्तर श्रवण करते हैं, वे देवता तक, अपने विमाना की ऊंची नीची बैठक आदि के कारण, रात दिन पारस्परिक द्वेषाग्नि में तचते-भुनते रहते हैं, और फिर अपने पुण्यों के क्षीण होने पर देवत्व से पतितावस्था का ध्यान सदा सताये रहताहै। अस्तु। सच्चा सुख जीव को मोक्ष के अतिरिक्त, अन्यत्र कहीं नहीं है। पापार्जन कर, जीव, जन्म कर्मवश, नारकीय एवं तिर्यक् योनियों में उत्पन्न होता रहता है, वही पुण्य के प्रताप से, मनुष्यभव, तथा देवत्व को प्राप्त कर सकता है। परन्तु, जो षट् काया जीवों की रक्षा में सम्यक् रूप से लगा रहता है, वह जीव अपने सम्पूर्ण पुण्य पापों का संहार कर, सिद्ध बनता हुआ. सि

इस अगाध संसार सागर में, जीव अपने ही कर्मों से कर्म-बन्धन में फँस क्लेश का अधिकारी होता है, और वही, कर्मों के नाश से, मुक्ति के मार्ग का मार्मिक पथी बनकर, आत्मिक सुखों में लीन होजाता है।

जो जीव वैराग्य-भावों से जरा भी रञ्जित नहीं होते, वे विकल्प-चित्त होकर, दुःख और दुरितों के दोलायमान अगम सिन्धु में नित डुबकिया लगाते रहते हैं, विपरीत इसके, जो जीव वैराग्यवान् हैं, वे आत्मा के प्रदेशों से चिपके हुए कर्म रूप दलको सदा दूर ही करने में बने रहते हैं।

जो जीवन्मुक्त बन चुके हैं, वे स्वभाविक ही शुभ कामों में लगे रहते हैं। उनका शुभ कार्य करना यही उद्देश्य बन जाता है, क्योंकि वे सम्पूर्ण रूप से पवित्र बन गये हैं।

स्त्री, पुत्र, कलत्र, और धन से सच्ची तृप्ति नहीं हो सकती। यदि इन से कभी किसी को तृप्ति हुई होती, तो अभी तक जगत् में नाना प्रकार की योनियों की उत्पत्ति ही न होती। अस्तु। सच्ची तृप्तिका विषय तो है केवल आत्मिक गुण जिस के मिल जाने पर जीव सदा के लिए परितृप्त हो जाता है।

सदा प्रसन्न चित्त से ज्ञानादि गुणों में तल्लीन रहो चित्त और चहरे को कभी मैला न करो। तुम चित्त में यह निश्चय करलो, कि-चिन्ता ने तुम्हारे लिए जगत में

जन्म ही नहीं लिया। फिर, तुम देख पाओगे, कि आनन्द स्वरूप आत्मा में सिवाय ज्ञान के अज्ञान को स्थान ही कहा है।

शान्ति तो तुम्हारे ही अन्दर है। कामना रूप डाकिनी का आवेश जब तक तुम्हारे अन्दर है, तब तक शान्ति के दर्शन तुम्हें दुर्लभ हैं। वैराग्य के महा मन्त्र से कामना को भगाया जा सकता है।

सदा अपने हृदय को देखते रहो, कि कहीं उसमें काम, क्रोध वैर, ईर्ष्या, घृणा, हिंसा, मान, और मद रूपी शत्रु घर न करलें। इन में से जिस किसी को भी देखो, तुरन्त भगादो। पर, देखना बड़ी बारीक नजर से सचेत होकर, ये चुपके से अन्दर आकर छिप जाते हैं, और मौका देख कर अपना विकराल रूप दिखलाते हैं।

जिस प्रकार यह जीव राग-द्वेष द्वारा कर्मोपार्जन कर, उस के विपाक फलों को भी भोगता है, उसी प्रकार, राग द्वेषादि निवृत्ति द्वारा, जो प्राणी निज-कर्म कलापों को चय करने में समर्थ होता है, वही, सिद्धालय में सिद्ध-पद को प्राप्त कर, अटल सुख का अनुभव करता है।

धर्म ही, इस त्रैताप—जन्म, जरा, और मृत्यु सम्पन्न ससार में मनुष्यों का हितकारी, और आत्मा का सच्चा मित्र है। यदि, तुम असावधानी से चलोगे, खड़े होगे, ...गे, सोओगे, भोजन करोगे, तो तुम्हारा अहित होगा,]

परन्तु यही सब मित-व्यवहार रूप से, यत्न-पूर्वक करने में, तुम्हारी आत्मा को किसी भी प्रकार कोई कष्ट कदापि न व्यापेगा।

कर्म-बन्धन से छूटने का सीधा सच्चा यही उपाय है, कि तुम जगत् के प्राणि मात्र को, अपनी आत्मा के समान ही देखो और उनके साथ वैसा ही व्यवहार करो, तथा पचाश्रव को रोक कर पाचा इन्द्रियों को दमन करो।

जीव और अजीव, के सुगम बोध का उपाय सद्गुरु द्वारा आत्मिक ज्ञान का अध्ययन और मनन है। इसी एक मात्र ज्ञान के सहारे मनुष्य अहिंसा धर्म का वीर-उपासक बन सकता है। धार्मिक क्रिया के साथ, ज्ञान की भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी कि धर्म के लिए श्रद्धा भक्ति और विश्वास की।

कल्याण का प्रथम मार्ग यही है, कि अपने दिन के कुछ समय में सद् शास्त्रों का चिन्तवन और मनन या तो तुम स्वय करो, अथवा नहीं तो गुरु-मुख से उसका श्रवण करो। श्रवण के बाद, उसपर एकान्त और निरन्तर, थोड़ा बहुत जितना बन सके, विचार करो। इन्हीं कामा से पापादि बधनों का परिचय भी तुम्हें मिल सकेगा, और कल्याण कारी मार्ग के ग्रहण और अवलम्बन की इच्छा का उदय

जिन जीवों को जीव और अजीव का अभिज्ञान नहीं है, वे जीव रक्षा धर्म का यथोचित–पालन क्यों कर और कब कर सकते हैं। परन्तु जिसे जीव और अजीव के भेदा-भेद का जराभी बोधहै, वह जीव रक्षा–पालन के धर्म में अवश्य सफल हो सकेगा। इसी ज्ञान में गति रखने वाला, सब जीवों की गति का जानकार हो सकता है, और जीव अजीव के भेदाभद के ज्ञान का सम्यक् अधिकारी हो, वह कर्म बन्धन और मुक्ति के मार्ग का जानकारी भी होगा।

जब मनुष्य पुण्य पाप के मार्ग से परिचित हो जाता है, तब उसे नर–देह–सम्बन्धी भोगों से निवृत होने की इच्छा उपज जाती है। फिर,जब वही मनुष्य, इस इच्छा का भी परित्याग कर, बाह्य कुटुम्बादि, एवं अन्तरङ्ग क्रोधादि शङ्का सयोग से परिमुक्त हो जाता है, तब वही साधु कह-लाता है। यही साधु अवस्था, एक एसी अवस्था है, जि समें रह कर ही मनुष्य जन्म जन्मान्तरों के सञ्चित कर्म क्षय में पूर्ण समर्थ हो सकता है। कर्म क्षय हाजाने पर, वही महा भागा, सारे लोका लोकों को हस्तामलकवत् देख और जान, सकता है। यों, उसके मन-वचन और कर्म की चञ्चलता भी दूर हो जाती है। अन्त में, वही मुक्ति के पथ का पथी बन सिद्धानन्द के मधुर रस का अमृत पान करता है।

परहित–परायणता में जो गृहस्थी होकर भी, कभी

अपने हितों की हिमायत नहीं करता, वह गृहस्थी भी प्रशमनीय है। ऐ संसारी जीवों! यदि तुम्हारी उम्र का अधिकांश भाग भी पाप कर्मों के अर्जन करने में व्यतीत हो चुका हो, तब भी हताश होने की कोई बात नहीं। उठो अब भी चेतो! और किये हुए पाप कर्मों के लिये बारम्बार क्षमा-प्रार्थना करो। फिर, दूसरी ओर तुम तप, संयम, क्षमा, और ब्रह्मचर्य आदि में जुट पड़ो। जिससे पर-भव में तुम्हें सुखों की सम्प्राप्ति हो।

मनुष्य को सदा चाहिये, कि वह पिछले पैर को तब तक कभी न उठावे, जब तक कि आगे पैर रखने की जमीन को न देखले। जिससे अन्य जन्तु आदि अपने शरीर का घातक नहीं बन सके।

वेश्या के मुहल्ले में से पार होकर, कभी नहीं निकलना चाहिए। ऐसा करने से उनके धर्म की भरक्षा हो सकेगी।

जिस मार्ग में प्रसूता गौ, मस्त साँड, मदोन्मत हाथी व घोड़ा आदि खड़े हुए हों या वे परस्पर लड़ रहे हों, तो मनुष्य उस मार्ग को उस समय के लिये छोड़ दे।

मनुष्य को चाहिये कि, दौड़ते हुए, बोलते हुए तथा हसते हुए कभी न चले।

अहिंसा-धर्म प्राणि मात्र को सुख-प्रद और साध्य है। अतएव, उसका यथावत् पालन किया जाय।

क्या एकेन्द्रिय, और क्या पञ्चेन्द्रिय जीव, सभी जीने की इच्छा रखते हैं, पर मरना दुखी से दुखी जीव भी नहीं चाहता। अतएव, प्राणि मात्र के प्राणों की रक्षा करो।

क्या तो अपने लिए, और क्या पराये के लिए झूठ कभी भूल कर भी न बोलो। क्योंकि यह सबसे निन्दनीय और अविश्वास का स्थान है।

जो जन चोरी करते हैं, वे राज्य और अपने समुदाय में, सदा अति ही घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं।

आत्मा की अमर-शान्ति के लिए, प्रत्येक आबाल वृद्ध नर-नारी को ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन, नियम पूर्वक और बड़ी सावधानी से, करते रहना चाहिए।

संसार में मनुष्यों को उचित है, कि वे अपने धन की एक मर्यादा बाँधकर, अगाध तृष्णा को सन्तोषित कर सकने में भर सक प्रयत्नशील बनें। विरले ही जन इस तृष्णा को जीतने में आज तक समर्थ हो सके हैं। क्यों कि, मनुष्य के शरीर में उसके बुढ़ापे के साथ ही साथ, इसकी नित नयी जवानी शुरू होती है। अर्थात्-संसारी जीव ज्यों ज्यों बूढ़ा बनता जाता है, तृष्णा भी उसी प्रकार अधिक बढ़ती ही जाती है।

असमर्थ प्राणियों के प्राण-रक्षार्थ कभी कोई रात्रि [illegible] जन न करें।

प्राणी प्रत्येक समय सत्य बोले, परन्तु ऐसा अप्रिय सत्य भी कभी न कहे, जिससे सुननेवाले के चित्त, चरित्र और चेष्टाओं पर कोई आघात पहुंचे।

मनुष्यों को चाहिए, कि न तो वे कभी किसी पुरुष ही को, काना,-खोडा, लगडा लूला, अन्धा-बहिरा, गूगा-अपाहिज, मूर्ख-कुचाली, और भिखारी तथा दुर्भागी कहे, और न कभी किसी स्त्री ही के प्रति, वे कुलटा, मूसो छिनाल, वन्ध्या, आदि शब्दों का उपयोग करें।

जो यथावत् साधुवृत्ति का पालन करे, उसेही साधु कहना चाहिए। असाधु को साधु कहना महा पाप है।

क्रोध, लोभ, भय और हंसी के वश हो, कभी ऐसे बोल न बोलो, कि जिससे किसी का प्राणान्त ही होजावे।

यदि धर्म साधन के लिए कितने ही कष्ट भी उठाने पडे, तोभी हताश न होओ। सदा स्थिर चित्त रहो; कम बोलो; और कभी तनतनाटे न करो।

मानव-जीवन अति ही अल्प और अनित्य-नाशमान है। अतएव, पाचों इन्द्रियों के विषय व्यापारों से मुँह मोड़कर, उनसे सारा नाता तोडकर, सम्यक्-ज्ञानदर्शन, चारित्ररूप और मोक्ष मार्गके अनुसधान में मनुष्य को सदा प्रयत्न-शील होना चाहिए।

किसी भी कार्य को आरम्भ करने के पहले, अपने

निजके बल और पौरुष, आयोजन और आरोग्यता, श्रद्धा और साहस, विवेक और बुद्धि, विद्या और विचार आदि का पूरा पूरा विचार कर लिया करो। साथ ही, देश और काल का भी उचित ध्यान रक्खो।

जहा तक तुम्हारी इन्द्रिया सबल और सावधान बनी हुई हैं, तुम्हारा शरीर भी जबतक स्वस्थ और सचेष्ट है, तबतक, धर्म धन और सद्विद्या का सञ्चय कर लेना चाहिए। जिससे समय के निकल जाने पर फिर तुम्हें पछ ताना न पड़े।

क्रोध, मान माया और लोभ, ये चारों ही पाप के पैदा करने के प्रधान साधन हैं। इसलिये इनसे सदा दूर रहो। क्रोध प्रीति को नाश कर देता है, मान से विनम्र भाव भ्रष्ट हो जाता है कपट से मित्रता मिट जाती है और लोभ भी तो सारे ही सद् गुणों का सफाचट कर जाता है। अत एव इन दुर्गुणों से सदा कोसों दूर रहने का प्रयत्न करो।

प्राणियो को चाहिए, कि वे क्रोध को शान्त कर, क्षमा के कवच को धारण करें, मान पर विजय लाभ करने के लिये विनम्र भाव से सुसज्जित हों, कपट का स्वाभाविक सरलता से, अन्त कर, और लोभ को वशीभूत करने में सन्तोष का सहारा लें।

भव-भ्रमण रूप वृक्ष में, जन्म जरा, मृत्यु आदि उसकी डगालियाँ और शाखाएं हैं। क्रोध, मान माया

और लोभ रूपी वारि से, इस वृक्ष की अनुकूल वढ़ती होती है। इसलिये,जो भव-भ्रमण रूप वृक्षकी विषैली छाया में कभी न बैठना चाहे, उसे क्रोध, मान, आदि पर विजय प्राप्त करने में सदा अनवरत रूप से लगे रहना चाहिए।

मुमुक्षुओं का कर्तव्य है, कि वे सद्गुणालंकृत महाभागा पुरुषों का सदा आदर सत्कार किया करें और पाचों इन्द्रियों को उनकी अपनी विषय-वासनाओं की ओर से बलात्कार पूर्वक हटाकर, कछुए के अङ्गों की भाति-उनका गोपन करना सीखे।

ससार के प्राणियों को चाहिए, कि वे एक नियमित रूपसे अधिक, आहार और विहार न कर, अधिक नींद न लें, हँसी का दुष्परिणाम समझ कर मजाक को त्यागदें, व्यर्थ ही कलहकारी और काम वृद्धि की बातें न करें; प्रत्युत, स्वाध्याय-सच्छास्त्र का पठन और आत्म चिन्तवन में अपने चित्त को सुस्थिर करने की चेष्टा करें।

ज्ञानी और सन्त महात्माओं की सेवा करते हुए, सदा उसज्ञान की टोहमें रहना चाहिए, जिससे एहिक और पारलौकिक सुख की प्राप्ति हो, परन्तु ज्ञानी गुरुके पास व कहीं भी सत्सङ्ग में बैठो, तो अविनय कभी न दिखाओ।

विचार शील पुरुषों को, चाहिए, कि वे, उन दो आदमियोंके बीचमें, जब वे बात चीत कर रहे हों कभी

न बोलें, चुगली न खावें, किसी के प्रति अनजान में भी कभी कोई अहितकारी वाक्य न कहे, जिससे सुननेवाले और न सुननेवाले कभी किसीको तनिक भी क्रोध न हो।

त्यागी हुई वस्तु का पुनः स्वीकार करना, मानों आत्म—दुर्बलता का दिग्दर्शन कराना है।

अपने गुरु और बड़े-बूढ़े हितैषियों की आज्ञा का, सदा शिर से पालन करो, और उनके वचनों में अपनी श्रद्धा रखते हुए, उन्हें प्रेम-पूर्वक सुनो।

किसी भी देहधारी की ओर कभी निन्दा न करे, नहीं तो, वह, सड़े कानवाली कुतिया के समान दर दर धुत्कारा जावेगा।

सत्शील पुरुषों को चाहिये, कि वे अपने सदाचरण का बदला दुष्कर्म और दुराचरणों से कभी न किया करें। यदि कोई ऐसा करने पर उतारू हो ही जाय, तो समझो कि वह उसी शूकर की समता करने चला है, जो पके पकाये और लबालब भरे हुए, चावलों के कुण्ड को छोड़कर, मैले में मुँह मारने को, किसी टट्टी की ओर जाता हो।

अप्रिय किन्तु सत्य, शिक्षा देनेवाले पर तुम कभी क्रोध प्रकट न करो और उसे तुम समझते रहो, कि हमारा सच्चा हितैषी यही है।

पण्डित, वही है, जो क्षमा से अपनी आत्मा को सदा [illegible] है।

क्रोध के आवेश में आकर, यदि तुमने कभी कोई गलती भी हो, तो उसे छिपाकर, न तो आत्म-दुर्बलता ही प्रकट करो, और न कभी तुम खुद दूसरे के क्रोध ही के पात्र बनो।

जाने हुए, या अनजाने हुए, जो भी तुम कुछ करो, उसके लिए कभी 'ना' न कहो, और न किये हुए कामों के प्रति कभी 'हाँ' भी न कहो। बस, संसार के सामने, अपना सिर सदा ऊँचा रखने और विश्वासी बने रहने का, यही एक मात्र सीधा सच्चा साधन है।

आत्मा का दमन करना, कठिनातिकठिन कार्य है, तो ऐहिक और पारलौकिक समस्त विभूतियें भी वे ही पाते है, जो आत्मा का दमन करते हैं।

यदि तुम स्वतः आत्म-दमन करने में असमर्थ हो, तो उसका दमन, किसी अन्य पड़ौसी द्वारा किया जायेगा। परन्तु, वहा तुम्हें यह स्मरण रखना होगा, कि तुम्हारी स्वतन्त्रता का जन्म-सिद्ध अधिकार, गुलामी से बदल देना होगा।

तुम विनम्र भावको जितना ही अधिक अपनाते जाओगे, उतना ही, तुम मुक्ति-मार्ग के निकटतक पहुँचते जाओगे।

धर्म-क्रिया और तप आदि, नम्रता के बिना शशक-शृंग के समान हैं।

विनम्रता-पूर्वक धर्म-क्रिया करते हुए, यदि कष्टों का सामना करना पड़े तो उसे भी सहर्ष और सोत्साह सहन करो। तुम्हारी यही अवस्था, तुम्हें एक दिन, क्या लोक और क्या परलोक दोनों में, कुन्दन के समान चमका देगी।

यदि तुम्हें कोई गाली दे तो उसका उत्तर तुम प्रेम पूर्वक रूप में दो। ऐसे उत्तर को, संसार, तुम्हारे आत्मबल के रूप में देखकर, तुम्हारा सम्मान करेगा।

मनुष्य जन्म, सद्वचन-श्रवण, धर्म में निष्ठा, और पराक्रम, ये चारों बातें, इस जीव को मिलना, कठिन ही नहीं, वरन् महान् कठिन भी है। जब जीव अनेक लाखों योनियों की चक फेरी के चक्कर में पड़ता पड़ता, कर्म-विपाक वश, एक समय मनुष्य जन्म का पाता है, तब फिर चारों बातों का मिलना तो, सचमुच ही अति दुस्तर है।

यदि लाखों-करोड़ों कठिनाइयों को सहते सहते, एक दिन, मनुष्य जन्म मिल भी गया, तो उन सद्वचनों का सुनना, अति कठिन है, जिनके द्वारा, अहिंसा, तप, क्षमा, आदि की ओर अभिरुचि हो, फिर, जैसे तैसे, उन सद्-

चनों के श्रवण का सयोग भी मिल गया तो उन वचनों पर विश्वास का जमाना और भी कठिन-तर है; यदि येन-केन प्रकार से, सुकर्मों के सस्कारवश, उन पर भी विश्वास हो आये, तो उसमें पराक्रम का पाना तो घोर कठिन है। फिर, बिना पुरुषार्थ किये, मुक्ति का मिलना भी तो नहीं बनता। जब कर्म-सयोग से, चारों का उचित मेल होजाता है, तबही, आत्मा, काया की कापायिक वृत्तियों की अवहेलना करते हुए, कर्म-नाश द्वारा, मोक्षानुभव करता है।

यदि धर्म-क्रिया में, जब कभी कुछ न्यूनता भी हुई, तो भी प्राणी शुद्धान्तःकरण रखते हुए, अन्त म स्वर्ग-जात सुखों का उपभोग करता है। तथा, वहा अपनी इच्छानुसार, शरीर धारण कर, बारह देव लोक, नव-नव-ग्रैवेक और पाच अनुत्तर विमान आदि स्वर्गलोकों में, हजारों वर्ष पर्यन्त, तथा अनेकों सागर सुख-पूर्वक रहता हुआ, अपने धर्म-जात कर्मों का सुन्दर फल भोगता है।

ऐसे प्राणी, जब पुण्यों के क्षीण होजाने पर, पुन' मनुष्य लोक में आते हैं, तब वे यहा भी, सब प्रकार धन-धान्य से सम्पन्न घर में, उच्च जाति, और महान् कुल में, जन्म-धारण करते हैं। उनका शरीर नीरोग और सुन्दराकार होता है। फिर, वे धी-मान् बलवान यशवान् और विनय शील भी, अपने ढग के, अपने

जमाने के, एक ही होते हैं । यहां अनेक मनमित्र भी उन्हें आकर मिल जाते हैं ।

इस संसार में, एस अनेको देह धारी भी हैं, जो धर्म का वास्तविक स्वरूप और तत्त्व जान कर भी उसे अङ्गीकार नहीं करते।

प्राणी मात्र की आयु के खतम होजाने पर, फिर लाखों प्रकार के प्रयत्न करने पर भी, वह किसी प्रकार फिर जुड नहीं सकती और न वह तिल भर बढ़ही सकती परलोक तो दूर रहा, कौटुम्बिक जन तो जीते जी, इस लोक में स्वार्थ के बिना आश्रय तक नहीं देते ।

जो प्राणी, यहां पर, विषय जनित सुखों से जरा भी मुँह नहीं मोडते, वे परलोक में यमदूतों द्वारा, अनेकों प्रकार से सताये जाने पर, किसकी शरण ग्रहण करेंगे ।

जिस मनुष्य ने पाप या पुण्य, धर्म या अधर्म, किसी भी प्रकार का जराभी कोई विचार न करते हुए धन ही को सर्वे-सर्वा मानकर, उसको कमाने में जीवन का अधिकांश भाग लगाया है, वह मरण के पश्चात, एक लम्बे समय के लिए नरक में जा निवास करता है ।

जिन कौटुम्बिक जनों के लिए, प्राणी ने आजन्म पाप कमाया है, उन में से कोई एक आध भी, परलोक में उस के पाप-जन्य-दुखों का साथी नहीं होता । जैसे, खातके मुंह पकड़ाया गया एक चोर, अकेला ही, मार-पीट और

जेल आदि के दुख। को दण्ड-स्वरूप सहता हुआ, अछताता पछताता है, परन्तु उसका वहा कोई भी साथी नहीं बनता। उसी प्रकार, पाप कर्मों का करने वाला ही, उसके फलों को भोगेगा। फिर, कर्म-फल के भोगे बिना छुटकारा भी तो नहीं मिलता।

जो स्वजनादि के लिए कोई पाप किया जाता है तो उसके प्रकट हो जाने पर, उन स्वजनादि कों में से, उस पाप फल से, कर्ता को कोई छुडा भी तो नहीं सकता। फिर, पाप की पोल एक न एक दिन अवश्य खुलती है।

बहुत से मनुष्य पापाचार करते समय यह विचार लेते है, कि इस दुष्कृत के प्रकट हो जानेपर हम धन द्वारा अपनी रक्षा करलेंगे। यह विचार उनका बिलकुल ही निर्मूल है।

मृत्यु महान् भयङ्कर है उसके सामने ससार का शारीरिक बल किसी भी गिनती में नहीं। केवल धर्म और सदाचरण से उपार्जन किया हुआ आत्मिक बल ही, उसके सामने छाती ठोक कर खडा रह सकता है।

जो पापों के फलो से डरता है, वह अहिंसा धर्म के पालने में भी अवश्य निडर हो जाता है। और जो विचारवान् उसी अहिंसा धर्म के आश्रय में आजन्म रह कर, धर्मार्जन करने का अपना ध्रुव ध्येय निश्चित कर लेता है, वही अन्त समय में समाधि का साथ कर, कर्म-दल को समूल नाश करता हुआ, अटल अमरपद मोक्ष का अधिकारी होता है।

आयु का अन्त होने के पहले, जिन जिन त्याग और धर्मों की धारणा मनुष्य को करनी है, करलेना चाहिए। वरना, अन्त में पछताने के सिवाय, न कुछ हो ही सकेगा और न कुछ हाथ ही रहेगा।

जो प्राणी यहां जन्म धारण करके आता है, वह एक न एक दिन यहां से अवश्य जाता ही है। पर भेद इतना ही है, कि एक तो प्रसन्नता पूर्वक अपने जीवन को सार्थक करते हुए जाता है और दूसरा, रोते-बिल-बिलाते, और अनेक प्रकार से अपने कर्मों को कोसता हुआ अकुलाता पछताता मरता है।

"परलोक है या नहीं, किसने देखा। फिर, यह प्रत्यक्ष सुख दायक भोग किसमे और किस प्रकार छोड़ा जाय?" ऐसा कहने वाला और माननेवाला, अति ही अज्ञ है, अविवेकी है और अनाचारी है।

यदि तुम सुख की खोज में हो तो विषय जन्य सुखों से मुंह मोड़दो। बस, तुम्हारे ऐसा करते ही, तुम्हें अटल और अगाध सुख की प्राप्ति हो जायेगी।

जो अज्ञ देहाभिमानी, बिना ही कारण, निष्काम प्राणियों की हिंसा करता है, झूठ बोलता है, नाना प्रकार के कपट कौशल करता है, चुगली खाता है, उसे परभव में धाप धाप करके पछताना पड़ता है।

जैसे, एक अलमिया (एक जन्तु विशेष, जो अति वृष्टि के समय, एक लम्बे कीडे के रूप में, अपने दोनों मुह मे इधर उधर सरकता जाता है) मिट्टी खाना और उसी में रहना पसन्द करता है और वहीं, मिट्टी के सूख जाने पर तड़फ तडफ कर मर मिटता है, उसी प्रकार, ससार के अज्ञ जीव, रातदिन पाप–कर्म मे रत रहकर, अन्त समय में रोगादि अनेक प्राणान्त कष्टों को सहते हुए, तडफ तडफ कर यहा से विदा होते हैं, और फिर नर्क में जा और जन्म लेकर *नाना प्रकार के घोर कष्टों को, रात दिन वहां सहन करते* रहते हैं।

जैसे, एक गाड़ीवान् सुगम पथ को छोडने और बदले में एक विषम पथका अनुसरण करने पर धुरा के टूट जाने के कारण, पूर्ण पश्चाताप करता है उसी प्रकार दयामय धर्म को छोडकर, हिंसा का पथिक बनने पर, प्राणी पश्चाताप का भागी होता है।

एक जुआरी दॉव पर अपने सर्वस्व को लगादेने और उसके खोजाने पर, जैसे पश्चाताप करता है, उसी प्रकार, हिंसा करनेवाले प्राणी भी परलोक में अपने कृत कर्मोंपर पछतावेंगे।

कोई वेष विशेष, या शरीर के किसी चिह्न विशेष, से न कभी मुक्ति किसी को मिली और न मिलती ही है।

बिना भाव-मशुद्धि के, जो केवल वेष का सहारा लें, संसार में, पट भराई के लिए उतर पड़ते हैं, वे नर्क से भी कभी निस्तार नहीं पासकते।

जो प्राणी, गृहस्थाश्रम में रहकर भी, श्रद्धा पूर्वक सामायिक पौषध व्रतोंका पालन करता रहता है, वह अन्त में अवश्य ही स्वर्ग गामी होता है।

पापी प्राणी मौत से, जब देखो तब बड़े ही भयभीत होते रहते हैं, विपरीत इसके,सदाचारी और ज्ञानवान् पुरुष, मृत्यु की मोहकता से जरा भी मोहित न हो, अनुरागपूर्वक पण्डित मरण का आलिङ्गन करने में अपना अहोभाग्य समझते हैं।

जो जराभी ज्ञानवान् है, वह सत्य की, किसी न किसी अंश में खोज करना, अपना ध्येय और श्रेय समझेगा, और प्राणि मात्र के मिलने में मैत्री का सुन्दर अनुभवभी वहां कर सकेगा।

जो केवल हठादि योगा का साधन कर मुक्ति मार्ग के इच्छुक हैं, साथही, जो हिंसा वृत्ति के हिमायती भी हैं, वे अज्ञानी, बिना ज्ञान और सत्क्रिया इन दोनों के, कभी मुक्ति नहीं पा सकते।

अनेक देहाभिमानी प्राणी ऐसे भी हैं, जो हिंसा के उपासक होते हुए भी, अपने को पण्डित मान बैठे हैं।

यदि, तुम्हें मुक्ति की इच्छा है तो ज्ञानके साथ धार्मिक-क्रिया भी करना तुम सीखो। फिर निस्सन्देह, तुम निर्वाणपद के निश्चयात्मक अधिकारी बन सकोगे।

यदि, तुमने तुम्हारी आत्मा को, हिंसा, झूँठ, कपट, चोरी, मैथुन, दगाबाजी, शराब और मांस आदि पापपूर्ण खाद्यों से परिपुष्टि की है, तो तुम्हारा यह कार्य उसी प्रकार का है जैसे; कि कोई एक पुरुष, अपने बकरे, का एक आगन्तुक महिमान के आगत-स्वागत, के लिए, गेहूँ, चना, मक्का, आदि खिला-पिलाकर, हृष्ट पुष्ट बना, एक दिन, उसकी आव भगत में, उसका बलिदान करके, अफ़सोस पछताता है, उसी प्रकार, तुम भी एक दिन मृत्यु के मिहमान, बन कर, नर्कके अन्दर महान् दुःख उठाओगे।

ऐ संसारी प्राणियो! तुम इन पौद्गलिक सुखों के लिए, परम अटल और नित्य स्वरूप मोक्ष के सुखों से हाथ न धो बैठो। जैसे, एक व्यक्ति, जिसे एक दूसरे व्यक्ति से बीस कौड़ी-लेनी थी, अपने एक संघाती का साथ छोड़ कर जाने लगा। तब उसके उस साथी ने उसे अकेला जाने से बहुत कुछ रोका, परन्तु उसने जराभी न सुना। क्योंकि, उसने तो अपने सारे सुखों को, अपनी लेय बीस कौड़ी के बदले, बदल देने का पक्का ही इरादा कर लिया था। कुछ दूर जाते, रास्ते के एक भयङ्कर जङ्गल में, उस के पास का सारा धन वहा के चोरों के द्वारा लूट लिया गया।

तब वह हाथ मल मल कर पछताने लगा। ऐसे ही मनुष्य पाद्गलिक सुखों के पीछे मोक्ष के अटल सुखों को छोड़ देते हैं, वे भी यों ही घाप घाप कर पछताते हैं।

संसार में तीन प्रकार के व्यवहारिया लोग पाये जाते हैं। एक वे हैं, जो मनुष्य-जन्म धारण कर, सुकृतों द्वारा अपनी मूल रूप धर्म की पूंजी को बढ़ाते हुए, स्वर्ग या मोक्ष के अधिकारी बनते हैं दूसरे वे हैं, जो पुण्यपाप का जमाखर्च बराबर रखते हुए यहां से विदा होते हैं, और पीछा मनुष्य जन्म ही धारण करते हैं। और तीसरे वे मनुष्य हैं, जो अपने पूर्वभव के कर्मों द्वारा, पापों की वृद्धि करते हुए, पशु, पक्षी आदि की हीन योनि में मरण के अनन्तर जन्म-धारण करते हैं। इन तीनों प्रकार के व्यवहारियों में से उत्तम वही है, जो मोक्ष के सुखों का लेन-देन करें।

जल की एक बूँद, और एक समुद्र के बीच अथवा राई के एक दाने और एक पर्वत के बीच, जितना अन्तर है, उतना ही अन्तर, नरलोक और स्वर्ग लोक के सुखों के बीच है।

लोक कल्याणकारी धर्म को छोड़ कर, जो अधर्म को अङ्गीकार करते हैं, वे मरने के पश्चात् सीधे नर्कगामी बनते हैं। और इस के प्रतिकूल, धैर्य धारण कर धर्मा

चरण करने वाला है, वह यहा से सीधा स्वर्ग ही में जा जन्म ग्रहण करता है।

यदि तुम्हें सुख के प्राप्ति की अभिलाषा हो तो तृष्णा को कभी न बढ़ाओ और सन्तोष को सदा धारण करते रहो।

ससार में जितने भी क्लेश और कलह, पाप और ताप, रोग और शोक, मद और मात्सर्य और दुःख और दर्द हैं, उन सब की जड़ एक मात्र धनही है।

ससार में काम ही मोह और ममत्व का मूल कारण है। अस्तु। एक मक्खी, जैसे श्लेष्म मे फसकर अपना सर्व नाश कर बैठती है, वैसे ही काम—भोगों में फसकर, मनुष्य भी अपने सत्यानाश होने के सामान का जोरों के साथ, रात-दिन सग्रह करता रहता है। और देव-दुर्लभ अपने नर जन्म को यों ही वृथा गवादेता है।

हिंसा, सर्वत्र हानिप्रद है, परन्तु अहिंसा, सम्पूर्ण कर्मों को, अपने अमर गुण—धर्म द्वारा, क्षयकरनेवाला अजेय अस्त्र है।

तुम अपनी गफलत से, इस गलत—फहमी में हो, कि धन ही की अधिक अधिक वृद्धि से तृष्णा का तिरस्कार होजाता है, तृष्णा का तिरोभाव हो जाता है। बात वास्तव में ऐसी नहीं है। तुम्हारी यह नीती तो धधकती

हुई अग्नि में, अधिकाधिक काष्ठ—मार डाल कर, उसे बुझा देने ही के समान है, पर स्मरण रक्खो, कि यों तो आग अधिकाधिक प्रज्ज्वलित ही होती है, कभी बुझती नहीं। नर बड़ी बड़ी गहरी नीवें खोद कर मनोहर और गगन चुम्बी मकानों की रचना करते-करवाते हैं। पर एक दिन, ये सारे ऐशो-आराम और लुत्फ के समान, तुम्हें, यहीं के सँघाती सिद्ध होंगे, और वह भी केवल सुख के दिनों के, दुःख के कदापि नहीं।

हां, अग्नि ही एक ऐसा सामर्थ्यवान तत्व है, जो इस दृश्यमान संसार के सम्पूर्ण पदार्थों को जलाकर भस्म कर देता है, परन्तु, आत्मिक गुणों को जलाने और उन्हें भस्मी भूत करने की सामर्थ्य तो, उसमें भी नहीं है।

यदि तुम्हें युद्ध करना पसन्द है, तो आओ, श्रद्धा का एक नगर तैयार करो। फिर, उसमें वैराग्य का विकट दर्वाजा, तप की भागल, संवर-स्मरण के किवाड़ उसमें जगह जगह लगाओ। उसी में, क्षमा रूपी दुर्दमनीय एक किले की सृष्टि भी हो। अकेला किला बनाकर छोड़ देने ही से काम पूरा नहीं होगा। उसमें गोप्य भाव की फिरणी खाई और तोपें रक्खो, पराक्रम रूप धनुष को धारण करो, ऊपर से सुमति रूपी जीवा, धैर्य रूपी मध्य भाग, सत्य रूपी बन्धन और तप रूपी लोहे के सम्मिश्रण से बाणों का

विधान करो, या करवावो । यों सर्वाङ्गीण रूपसे सु-सज्जित होकर, भक्ति-ताप विषम घाटियों के मैदानों में कर्म रूप शत्रुओं के सामने आ उतरो । यह निश्चय है, कि ज्योंही एक बार दिल खोल कर तुम ने युद्ध का प्रारम्भ किया, कि त्योंही तुम्हारे प्रबल से प्रबल शत्रु मैदान को खाली करते हुए नौ-दो ग्यारह बनेंगे । फिर देखोगे, कि उस समराङ्गण में आए अनेकानेक शूर और सामन्तों को छोड़कर मोक्षरूपी मङ्गला सुन्दरी-बधू तुम्हारे ही साथ वरण करने में, अपना सौभाग्य और अहो-भाग्य समझेगी । वीर धर्मा और वीत रागी पुरुष ही, इस प्रकार की भुवन-मानस मोहिनी नित्य निधि से विभूषित होते हैं ।

प्राणियों की पाचों इन्द्रिया दिन रात उनके आत्मिक गुणों को चुराती रहती हैं । अतएव, इन से बचकर रहने का सदा प्रयन्त करना चाहिए ।

ससार में वेही वास्तविक योधा हैं; जो अपने मनपर विजय प्राप्त करें । सचमुच में, इस ऐसे दुर्भट मन पर विजय प्राप्त करना, मनस्वी कार्यार्थी पुरुषों ही का अप्रतिम पौरुष है ।

जिसने पञ्चेन्द्रिय दल, क्रोध, मान माया, लोभ और दुर्जन मन पर, यदि विजय प्राप्त करली है, तो समझो कि उसने सब कुछ प्राप्त करलिया है ।

साधु वृत्ति, यह, गौदान, भूमि-दान, सुवर्ण-दान और गृहस्थ के सम्पूर्ण सत्कार्यों से भी बढ़कर है। और साधुता का अर्थ, बिना बदला के सेवा, स्वार्थ-त्याग, निरीह-भाव, सज्जनता, पर-हित-परायणता, और तत्त्व का चिंतनन है।

संसार में जैसे धन राशि अपरिमाण में है, वैसे ही तृष्णा का भी अन्त नहीं है। अर्थात् धन से भी तृष्णा अनन्त गुणा अधिक है। या यूँ कहो, कि जैसे आकाश का ओर-छोर पाना असम्भव है, तृष्णा तरङ्गिणी के तट का ताड़ जाना भी उससे किसी कदर कम कठिन नहीं है। जैसे कोई एक तृष्णावन्त व्यक्ति को, यदि सुवर्ण से सम्पन्न, सम्पन्न ही नहीं, उसीसे ओत-प्रोत, सारे संसार की भूमि भी देदीजाय, तो भी उसकी तृष्णा की तसल्ली कभी नहीं होती।

काम भोगों का परित्याग कर देने पर, फिर से उनके प्रति इच्छा और अनुराग का होना दुर्गति के दुरागमन का लक्षण समझना चाहिए।

क्रोध से अधोगति और मान से हीनता का जन्म होता है।

कपट से शूकर, मेषादि की योनियों में सैर करना पड़ता है।

जैसे वृक्ष के पत्ते कुछ काल ही में पीले पड़ कर गिर पड़ते हैं, वैसे ही अपनी आयु के पूर्ण होजाने पर मनुष्य भी मृत्यु के मुंह में जा गिरता है।

ओस की बूंद जिस प्रकार अस्थिर और क्षण स्थायी होती है, मनुष्य की जिन्दगी भी उसी प्रकार अनित्य और पानी के बुद बुदे के समान, चट कहते में नाश होने वाली है।

जो भी मनुष्य इतना अल्प-जीवी-क्षण-भंगुर-प्राणी है, तथापि उसकी छोटी सी जिंदगानी, रोग, शोक आदि अनेक प्रकार के विघ्नों से भी तो खाली नहीं है।

द्वेन्द्रिय, त्रयेन्द्रिय और चतुरेन्द्रिय योनियों तो आत्मा कई बार जन्म धारण करती है, परन्तु, पञ्चेन्द्रिय योनियों में, लगातार सात आठ बार से अधिक वह जन्म धारण नहीं करती, और स्वर्ग तथा नर्क में तो वह एक ही बार आती—जाती है।

मनुष्य-जन्म, आर्य-क्षेत्र, उत्तम-कुल, दीर्घायु, पूर्णेन्द्रिय, नीरोग-शरीर-सद्गुरु-मिलन, सच्छास्त्र-श्रवण शुद्ध श्रद्धा पराक्रम (कार्य रूप में परिणति) ये उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं। इन सब गुणों से युक्त पुरुष, सुखोपभोग कर अन्त में, अभेद ज्ञान की प्राप्ति द्वारा, कैवल्य-पद का अधिकारी बन, मोक्ष के सुखों का स्वाद

रखता है।

ए देव—दुर्लभ—शरीर—धारी मनुष्यो! तुम्हारे देखते ही देखते इस शरीर की अवस्था शिथिल होती जा रही है, इस काया के अन्दर कँप-कपी ने भी अपनी राव काम शुरू करदी है, कृष्ण वर्णों वाले सारे के सारे नर्क के रङ्ग से होड़ाहोड़ी करने जारहे हैं, पांचों इन्द्रियें अपने काम से विराम लेने की चेष्टा में अपनी ताक लगाये बैठी हैं, फिर भी, इन वैलासिक क्षणिक सुख के पीछे लग, तुम किस गफलत में खुर्राटे भर रहे हो!

तुम संसार में रहते हुए भी, उस के समस्त विषय व्यापारों और उन के फलों से, इसी प्रकार अपने आप को दूर रख सकते हो, जिस प्रकार कमल का पत्ता समुद्र आदि में रहते हुए भी, अपने आप को, उस के जल से निरा निर्लेप रखता है।

भसार—समुद्र के परले पार जाने के लिये, यह नर देह ही एक मजबूत नौका के सदृश है। अतः जितना भी जल्दी तुम से हो सके, एक क्षण मात्र भी व्यर्थ न गँवाते हुए, इस अगम, अगाध भव—सिन्धु को लाँघने की तू गाढ़ी कोशिश कर।

ज्ञान और त्याग रूपी सीढ़ियों के द्वारा, मुक्ति के

द्वार पर पहुंचने के साधन रूप समय को, जरा भी हाथ में से व्यर्थ मत जाने दो।

प्रत्येक जन—पद में जा जा कर, उसकी गलियों गलियों में, शान्ति की गम्भीर और गगन–भेदी घोषणा करो। यही तुम्हारे जन्म और जीवन का ज़बरदस्त कर्तव्य है।

अहङ्कारी, क्रोधी, प्रमादी, रोगी और आलसी को ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती।

प्रत्युत, जो क्रम हमनेवाला है, इन्द्रिय–जित है, जो व्यंग्योक्ति लिए हुए नहीं बोलता है, जो अपनी मर्यादा में रहनेवाला है, जो सांसारिक रसों के आस्वादन में लोलुप नहीं है, और जो अक्रोधी, तथा सत्य–भाषी है, उसी को ज्ञान और विज्ञान की विशेष प्राप्ति होती है।

जो हर बात में क्रोध और कर्कशपन दिखाते हैं जो दीर्घ द्वेषी हैं, मित्र के साथ तक कृतघ्नता का कटु व्यवहार करने वाले हैं, जो धर्म शास्त्रों के पवित्र पठनपाठन से भी, अपने हृद्–गत अभिमान के मैल को बहाने में असमर्थ सिद्ध हो चुके हैं, जो अपने अवगुणों का अपराध दूसरों के सिर मढ़ने वाले हैं जो अपने मित्रों तक से व्यर्थ के टण्टा—फसाद कर बैठने ही को आनन्द मानते हैं, जो मित्रों तक की, उन की पीठ पर निन्दा

करते हैं, जो असम्बद्ध और अश्लील भाषा—भाषी हैं, द्रोह और अभिमान जिन का असल भाग है इन्द्रिय-लोलुपता का अधम व्यापार ही जिनके प्राण प्यारा है, जो इन्द्रियों के अधम दास हैं, जो पराये हिस्से तक को हजम कर जाने में तनिक भी नहीं हिचकते, और अधम तथा अप्रिय कामों को अपनाने वाले हैं, मुक्ति ऐसे पुरुषों से हमेशा दूर रहती है।

यदि तुम्हें सच्चे सुख की आकांक्षा है, तो आत्म रूप वेदी में मन से पहले तप रूप अग्नि को प्रज्ज्वलित करो। फिर, उस में मन—वचन काया रूप चाटु (स्रुवा) से कर्म रूप ईंधन को होमते हुए, संयम रूप शान्ति के सुन्दर, पाठों से यज्ञ की आराधना का आयोजन करो।

यदि तुम आत्मा के पाप रूप मैल को दिल से दूर करने के लिए लालायित हो, तो ब्रह्मचर्य रूप शान्ति तीर्थ के, धर्म रूप निर्मल नीर वाले ह्रद (सरोवर) में, स्नान करने का निरन्तर अभ्यास करना सीखो।

संसार में जितने भी गीत हैं, वे सब के सब रुदन रूप नाटक विडम्बना, और अलङ्कार, भार-भूत हैं।

जिसने यहां धर्म संग्रह नहीं किया, वह परलोक में पछताने के सिवा क्या करेगा।

जैसे एक व्याघ्र जब किसी हिरण को, अपने पञ्जे मे फसा मारता है उस समय, वहा खड़े हुए अन्यान्य हिरण उस व्याघ्र का सामना न कर, भा भा करते हुए भाग जाते हैं, उसी प्रकार, मनुष्य जब मौत के मुह का ग्रास बनता है, उस समय, उस के हितू-मित्र, तथा पारिवारिक जनों मेंसे कोई भी उसके नेरे आ, छुडाने की चेष्टा और चिन्ता नहीं करते।

यहा से विदा होते समय, इस ससार के दास, दासी धन, धान्य, सम्पदा गृह, और सारे पारिवारिक जनों को यहीं छोड कर जाना होगा। उस समय के निरसघाती केवल तुम्हारे कृत-कर्म ही हो सकेंगे।

यदि तुम भोगों का परित्याग नहीं करोगे, तो भोग ही एक दिन, तुम से साहजिक छूट जायेंगे।

ससार में जो भी तुम्हें सुख मालूम होता है, पर वास्तव में यहा सुख का होना तो बहुत दूर रहा, सुख का आभास तक यहा नहीं है। फिर, जिसका तुम सुख के रूप में अनुभव करते हो, वह तो विष मिश्रित पौद्गलिक, क्षणिक-मात्र के थोथे सुख का साज है। इतने पर भी उसका अन्तिम परिणाम तो, विषयों के विषैले व्यापारों से और भी विशेष निकट, विकृत और विरूप है। विचार-शील पुरुष उसकी तीक्ष्ण धारापर शहद की बूद, और अधम

अनर्थों की खदान से, तुलना करते हैं।

आत्मा को इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता। क्योंकि वह अमूर्ति मात्र है। शरीर का नाश होने पर आत्मा का नाश नहीं होता। क्योंकि वह अजर, अमर, नित्य, तैसे ही शास्वता भी है।

जो अमूल्य समय तुम्हारा जा रहा है, वह किसी भी प्रकार के बल और पौरुष से, कितने ही प्रयत्नों के करने पर भी लौटाया नहीं जा सकता। फिर, दिन-रात अधर्म में रत रहने वाले पुरुष का तो वह समय बिलकुल बेकार ही बीत रहा है, प्रत्युत, जो धर्म में रत है, उनका पल-पल सफल और स्मरणीय हो रहा है।

जिस द्रव्य को धर्म के नाम पर तुम अलग निकाल चुके हो, या किसी को कोई वस्तु तुम दान में दे चुके हो, उसे वापस अपने काम में लाना, या लेने की इच्छा भी करना, किसी प्रकार भी प्रशंसनीय नहीं है। जैसे, मुह द्वारा उगले हुए पदार्थ को, कौन मनुष्य पुनः खानेकी चेष्टा करेगा।

दूसरे को मरा हुआ देख, तुम यह विचार कभी मत करो, कि हम तो सदा अजर अमर बने
आखिरकार, यह घरेलू-घटना, तुम
[illegible] है।

साधु वही है, जो अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य और आकिञ्चन आदि धर्म-नियमों को शुद्धान्तः करण से सदा साधता है, और जो न तो रात्रि ही में कभी भोजन को ग्रहण करता है, और न कभी दूसरे दिन के लिए किसी वस्तु को संग्रह ही करके रखता है।

जो समय पर रूखा-सूखा, जैसा भी कुछ मिल जाय द्वेष रहित खाकर, अपने लोकोपकारी कर्तव्यों का प्रतिपल पालन करता रहे, और, यदि कोई न भी दे, तो उसके ऊपर कभी नाराजी प्रकट न करे, इन्हीं गुणोंसे गुणान्वित पुरुष की साधु संज्ञा है।

फिर, साधु वही है, जो इतर-फुलेलादि सुगन्धित पदार्थों से, पूर्ण रूप से पराङ्मुख रह कर, संसारी जीवों को शान्ति का मार्ग बताता रहे।

चाहे कोई अपशब्द कहे, या नमस्कार करे, या किसी प्रकार की तर्जना से ताडित करे, अथवा कोई प्रशंसा के पुल बाधकर प्रसन्न करने की चेष्टा करे, परन्तु किसी के भी प्रति जो मन में कभी नाराजी या खुशी के भाव तक पैदा नहीं होने देता, वही-उत्तम साधु है।

इतने पर भी, साधुओं की सच्ची पहचान है, जो पांव में कभी जूता नहीं पहनते, सिरपर छत्री नहीं लगाते और हर एक प्रकार के सिक्के, तथा पत्र व्यवहार सम्बन्धी सभी

प्रकार के साधनों तक से जो बचे रहते हैं, वेही त्यागी साधु हैं।

जो दही, दूध घृत, आदि सरस और तरह तरह के पौष्टिक पदार्थों का सदा सेवन करता हुआ, केवल पड़ा रहता है और अपने बल, विद्या, बुद्धि, विवेक और पुरुषार्थ से किसी को जरा भी लाभ नहीं पहुचाता, वह असाधु है।

जो कुसङ्गति के कारण, अभिमान के आवश में आ कर, अपने गुर्वादिक का सामना करने को उतारू हो और लोगों को परस्पर लड़ाने की चेष्टा करे, वह असाधु है। मित्र, पुत्र, कलत्र, बन्धु, बान्धव, दास, दासी आदि, ये सब जाने जी के सँघाती हैं।

यह शरीर महान् अशुचि, अनित्य, अनेक रोगों और आधि-व्याधि से ग्रसित तथा जरा से जर्जरित होनेवाला है। यह सब जानते हुए भी फिर इसमें ममत्व का रखना महान् मूर्खता का द्योतक है।

जैसे एक व्यक्ति अपने खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त मार्गोपयोगी सम्पूर्ण वस्तुओं का समुचित रूपसे संग्रय-कर, अपनी सफर को निकलता है, तो मार्ग-जनित समस्त कष्टों का आनन्द पूर्वक पादाक्रान्त कर, वह अपने गन्तव्य स्थान को पहुच जाता है। इसी प्रकार से, जो संसारी प्राणी, परलोक की लम्बी सफर करते समय, यदि धर्म रूपी

खर्चा अपने साथ रक्खें, तो मार्ग काटने में, उन्हें भी कोई मुश्किल न होगी। और वे भी सुख-पूर्वक अपने इच्छित स्थान को पहुच सकेंगे।

समझाते बुझाते हुए भी जो अज्ञ प्राणी हिंसा, झूठ, चोरी, जुँआरी, आदि निन्द्य और नगण्य कार्यों ही में अपना श्रेय समझते हैं, वे यहा से मरण के पश्चात् भी उन नर्कों में, जहा न तो सूर्य और चन्द्रही का प्रकाश है, और न तारागण व नक्षत्रों ही की कोई चमक है, जा, जन्म ग्रहण करते हैं। वहा यम दूत, जिन्हें अपनी तर्जना गर्जना यों दिखाते हैं, कि "मारो इन पापियों को मोगरों से, काटो तलवारों से, और भेदो इनका कलेजा, इन चमचमाती हुई त्रिशूलों से धर फेंको, इनको उस धधकती हुई आगी में, आदि, इन हृदय-वेधक शब्दों को सुन सुनकर उन नर्कनिवासियों के छक्के छूटे जाते हे, वे इधर-उधर भागने की भगदौड़ मचाते हैं, पर भयभते हुए अगारे मे भी, जमीन को अधिक धधकती हुई देख और अनुभव कर, वे धाड मारकर पुनः रोते और कलपाते हैं। पर, वहा उनकी उस आह को सुननेहीवाला कौन है।

इस प्रकार रोते-बिसूरते मरते-पचते, बेचारे इन अभागे नारकीय प्राणियों को, वहा कमसे कम दस हजार वर्ष और अधिक से अधिक तेतीस सागरोपम (समय की-एक लम्बी माप) पर्यन्त पडे रहते हुए, अपने कृत कुकर्मों

का फल भोगना पड़ता है।

इन नर्कों की शीतोष्ण दशा, यहा की शीतोष्ण दशा मे अनन्त गुणी अधिक है।

यमदूत यहा से गये हुए पापियों को, तप्त लोह स्तम्भों मे, मार मार कर, आलिगन करवा करवा कर, उन्हे चने के सदृश भूज मारते हैं। पर, कर्म–विपाकवश, उनके प्राणों का परिहार नहीं होता।

यमदूत, कभी उन पापी जीवों को, आगी से भी कई गुणा अधिक, उष्ण जमीनपर, जोरों से पटक मारते हैं, और लकड़ की तरह उन्हे चीर फेंकते हैं।

वेही यमदूत, किसी नर्कमें, उन पापियोंको, अतिही पैने काटेवाले वृक्षों पर सुलाते हैं। फिर उन्हें वे इधर से उधर और उधर से इधर खींचते है। जिससे उन की देह रोम रोम में छिद जाती है, और उन्हे असह्य तथा मर्मान्तक वेदना होती है।

फिर, वे यमदूत, उन पापी जीवों को, चर्खी की शान शक्ल वाले यन्त्रों में डाल कर, गन्ने की तरह पील–पटक त है, जहा, उनका शरीर ढीला होकर चूर चूर हो जाता है। कहीं, वही यमदूत, बड़े बड़े और अत्यन्त पैने दांतो वाले कुत्तों का महान् भयावना रूप धारण कर, जीर्ण–शीर्ण वस्त्रों की भांति उनके शरीरों को नोंच खसोंट कर,

रोते और चिल्लाते हैं, और बड़ेही आर्त्त व करुण स्वर में वे पापी अपन पारिवारिक जनों का पुकार पुकार कर कहते हैं, ऐप्रिय जनों हमें आज तुम यहा आकर, इस नर्क की नारकीय यातनाओं से क्या नहीं छुड़ाते ! हमारे ससार में होने के समय तो, तुम सदा अपने शरीरों के खून की नदिया बहान को भी उस समय तत्पर रहा करते थे, जब कि हमारे शरीर से पसीने की एक बूंद तक निकलती। तब, ये बातें यम लोग सुन सुन कर, उन्हें कहते हैं "अब क्यों मरते-चिल्लाते हो। पहले ही से विचार पूर्वक हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, मद-मास-सेवन, प्रभृति से तुम दूर रह होते, तो आज यह अवसर ही तुम्हें देखने को यहा क्यों मिला होता।

ऐ मोक्षाभिलाषी मानवो, तुम, पौद्गलिक, तथा अनित्य व काल्पनिक सुख, इस ससार में हैं, सब म निवृति भाव रखते हुए, अपने चित्त-चञ्चरीक को, श्रद्धा ज्ञान के बल पर टिकाए रखो। जिस ज्ञान-बल की प्राप्ति ही से सम्पूर्ण भव-रोग भस्म-सात हो जाते हैं।

तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा मित्र और वही तुम्हारा सशक्त शत्रु है, कर्म बन्धन का दृढाङ्ग कारण भी वही है, और स्वर्ग के सुन्दर सुखों का सुगम साधन भी वही है। यही, तुम्हारे सम्पूर्ण सुख और दुखों का द्रष्टा है, और यही कर्म का कर्ता तथा भोक्ता भी है।

ब्राह्मण वे हैं, जो सर्वज्ञ के वचनों का आस्वादन करते हुए उसी में रमण कर, और जो राग तथा द्वेष से सदा दूर रहें।

जो तपाभ्यासी होकर अपनी पाचों इन्द्रियों को दमन करने वाला हो; और जिसने हिंसा, चोरी जुआरी तथा व्यभिचार आदि दुर्गुणों का दिल से त्याग कर दिया हो।

जिस अनुष्ठान के अन्तर्गत पशुके वधका आयोजन हो, वह अनुष्ठान, अनुष्ठान नहीं; किन्तु पाप का हेतु है। और ऐसे अनुष्ठानों का कर्ता भी अधोगति को प्राप्त होता है।

न तो कोई केवल शिर मुण्डन से श्रमण कहला सकता है, न ओंकार के जप-जाप से ही कोई ब्राह्मण बन सकता है; न भगवा वस्त्र ही किसी को तपस्वी कहलाने की ताप रखता है, और न वन का वास ही किसी को मुनि बना सकता है। परन्तु, जो राग, द्वेष, काम मान मद, मायादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर, समता-भाव के सुन्दर राज्य में विचरणशील होते हैं, वेही श्रमण और ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि, तथा तपस्या से तपस्वी कहे जा सकते हैं।

कर्म ही से, मनुष्य परब्रह्म के गुण पहिचानता हुआ ब्राह्मण, कहलाने लगता है; वही अपने शत्रुओं के दमन

करने का सत्साहस और पौरुष रख कर चत्रिय, के नाम से प्रसिद्ध होता है। फिर, वही वाणिक वृत्ति की विचक्षणता से विभूषित हो, 'वैश्य' बनता है, और वही संसार की सेवा के भावों को धारण करने के कारण, 'शूद्र' संज्ञा से सम्बोधित किया जाता है'।

सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र, और सम्यक् तप, येही चार, आत्मरूपी रथी के लिए, मुक्ति रूप नगर को ले जाने वाले मजबूत और मनोहर मार्ग हैं।

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान और केवल ज्ञान, या ज्ञान पांच प्रकार का कहा जाता है।

इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करने योग्य, लोक में स्थित एक देशीयमान जो पदार्थ हैं, उनके प्रति पाचों इन्द्रियों और मन द्वारा जो ज्ञान होता है, वह अभिनिबोधिक—मति-ज्ञान कहलाता है। श्रुतज्ञान—दो प्रकार का होता है—एक द्रव्यश्रुत और दूसरा भाव—श्रुत। शब्द, लिपि पुस्तक आदि भाव—श्रुत ज्ञान के निमित्त कारण को द्रव्य—श्रुत ज्ञान कहते हैं। बोलने वाले का पुस्तक में लिखे हुए अक्षरों का पढ़ने वाले का, या स्पर्शेन्द्रियों द्वारा जाने हुए पदार्थों के प्रति विचार करने वाले का जो ज्ञान है; वह भाव—श्रुत ज्ञान कहलाता है। इस में द्रव्य—श्रुत ज्ञान की भांति अक्षरों का सम्बन्ध नहीं रहता। अर्थात् यह सिर्फ ज्ञान स्वरूप है। इन्द्रियां और मन की सहायता

क विना, केवल आत्मा से, द्रव्य, देश, काल, आदि की मर्यादा पूर्वक द्रव्यों का जो ज्ञान होता है, उसे ही अवधि—ज्ञान की संज्ञा दी है। अवधि ज्ञानी, नीचे के क्षेत्र के पदार्थों को अधिक और ऊपर के क्षेत्र के पदार्थों को बहुत कम जानते हैं। मानसिक विचारों को उत्पन्न करने वाले जा मनो द्रव्य के पर्याय हैं, उसको मनः पर्यवज्ञान कहा जाता है। समस्त द्रव्यों के समस्त पर्यायों को युगपत् (एक साथ) जनाने—वाला ज्ञान केवल—ज्ञान है। मति श्रुत अवधि और मन पर्यव ये चार ज्ञान तो एक साथ भी रह सकते हैं, परन्तु, केवल—ज्ञान तो सदा अकेला ही रहता है। अतएव, इसे 'केवल' कहते हैं। समस्त ज्ञानों म श्रुत—ज्ञान ही अधिक उपयोगी है। फिर, मति—ज्ञान, श्रुति—ज्ञान, अविधि—ज्ञान, और मनः पर्यवज्ञान ये चारों ज्ञानवरण के क्षयोपशम से प्रगट होते हैं। यही कारण है, कि ये ज्ञान समस्त द्रव्यों और उनके गुणों के सम्पूर्ण पर्यायों को, सम्यक् रूप से नहीं जान सकते। मति और श्रुत ये दो परोक्ष ज्ञान भी हैं। इसी तरह अवधि, मन. पर्यव और केवल ज्ञान, ये तीनों प्रत्यक्ष ज्ञान हैं। इन्द्रियों और मन, इन दोनों की सहायता से प्राप्त होने वाले ज्ञान को 'परोक्ष ज्ञान, तथा इन्द्रियों और मन आदि की सहायता के विना, केवल आत्मा से होने वाले ज्ञान को 'प्रत्यक्ष ज्ञान' कहते हैं। इन पांचों ज्ञानों

के मध्य, जो मति ज्ञान और श्रुत ज्ञान हैं उनकी सहायता से सम्पूर्ण द्रव्यों के कुछ गुण और कुछ पर्यायों को जाना जाता है। तथा, मन पर्यायज्ञान के सहारे, केवल मन पर्याय का ही जाना जाता है। और केवल ज्ञान, ज्ञानावरण के क्षय से उत्पन्न होने के कारण, सम्पूर्ण द्रव्यों के सम्पूर्ण गुणों और पर्यायों को जाननेवाला है। ज्ञान, यह द्रव्य, गुण और पर्यायों का उपभोग करता है।

द्रव्य गुण और पर्याय के लक्षण यों है—

जिसमें गुण उत्पन्न होते, ठहरते और नष्ट होते हैं वह, द्रव्य है। रूपादि गुण, अपने आधार रूप द्रव्य ही में रहते हैं। एक गुण में कोई दूसरा गुण नहीं रहता।

पर्याय, द्रव्य और गुण दोनों में रहता है। द्रव्य के साथ सदा रहने वाले धर्म को 'गुण, और क्रमशः परावर्तन होने वाले धर्म को ' पर्याय, कहते हैं। उदाहरणार्थ, पुद्गल द्रव्य रूप घट के, सदैव साथ रहनेवाले, रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श ये गुण हैं। स्थास, कोष, कुशल और कपालादि घट निर्माण के पहले होने वाली जितनी भी अवस्थाएं हैं, वे सब घट द्रव्य के पर्याय हैं। वैसेही, काला, पीला, नीला, लाल और सफेद ये रूप, गुण के पर्याय हैं। सुग

न्ध और दुर्गन्ध ये दोनों गन्ध, गुण के पर्याय है । खट्टा, मीठा, तीखा, कड़ुआ, और कसैला ये पाचों रस गुण के पर्याय है । इसी प्रकार, कठोर नर्म, भारी हलका, ठण्डा, गर्म, चिकना और रूखा, ये आठों स्पर्श गुण के पर्याय हैं ।

धर्म-अधर्म आकाश काल-जीव और पुद्गल ये छओं द्रव्य जितने क्षेत्र में व्याप्त होते है, वह क्षेत्र, 'लोक' कहलाता है ।

जहाँ आकाश के शिवाय अन्य कोई द्रव्य नहीं पाये जाते, वह अलोक कहलाता है । धर्म अधर्म और आकाश ये तीनों एक एक ही द्रव्य हैं । अर्थात् इनका विभाग नहीं होता । काल, द्रव्य, अतीत अनागत की अपेक्षा अनन्त गुणा है । इसी तरह, जीव और पुद्गल अपने अपने भेदों की अपेक्षा अनन्त गुणा है ।

धर्म-द्रव्य, प्रस्थान करते हुए जीव और पुद्गलों को उसी प्रकार सहायता देता है, जैसे मछली के गमनागमन में जल सहायक होता है ।

अधर्म द्रव्य, ठहरे हुए जीव और पुद्गलों का थमा हीं सहायक होता है, जैसे, थके हुए पान्थी को पथ के वृक्ष की छाया ।

आकाश द्रव्य, सम्पूर्ण जीवादि पदार्थों को अपने भीतर उसी प्रकार जगह देता है, जैसे, जमीन एक खूटी

का और दूध बताशों को अपने अन्दर स्थान देता है।

जिससे वस्तु की वास्तविक पहचान होती है, वह लक्षण कहलाता है।

कालादि द्रव्यों का वर्त्ताना, अवस्थाओं का बदलना लक्षण है। उसी प्रकार, जीव की चेतना, जीव का लक्षण है।

ज्ञानादि क दर्शन और सुख–दु:ख द्वारा जीव पहचाना जाता है।

किसी वस्तु के विशेष धर्मों को ग्रहण करनेवाले आत्मा क गुणों को 'ज्ञान, और वस्तु के साधारण धर्मों के ग्रहण करने वाले आत्मा के गुणों को, मैं दर्शन कहता हू। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और, वीर्य ये सब जीव के लक्षण हैं।

लाख, काठ आदि के बन्ध–भेद, कान्ति, किरणें उद्योत, अन्धकार, छाया, ताप, प्रकाश, प्रभा और शब्द आदि आदि जो इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं, वे पुद्गल कहलाते हैं। स्पर्श, रस, गन्ध, और वर्ण येही तो पुद्गलों के लक्षण हैं।

जिन परमाणुओं से घड़े की रचना की गई है उनके परस्पर पृथक—पृथक रहने पर भी, यह एक घड़ा है, ऐसी प्रतीति जिस से होती हो, वह, 'एकत्व' है।

यह घड़ा इन वस्त्रादि से पृथक है ऐसी प्रतीति जि

सरो होती है, उसे पृथकत्व कहते हैं ।

परिमंडल, कुब्जक, वामन, आदि आकार संस्थान कहलाते हैं । दो तीन आदि पदार्थों के सम्बन्ध को ' संयोग, तथा संयुक्त पदार्थों का, एक दूसरे से पृथक होना, ' विभाग कहलाता है ' ।

वस्तु में नयापन और पुरानापन, ये सब द्रव्य के पर्यायों का स्वरूप हैं ।

तत्त्व नौ प्रकार के होते हैं । जैसे, जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, और मोक्ष ।

चेतना गुण वाला ' जीवतत्त्व, चेतना गुण रहित धर्मास्ति कायादि ' अजीवतत्त्व, ' जीव और कर्मों की गाढ़ी एकता में ' बन्ध तत्त्व, ' शुभ प्रकृति रूप, पुण्य तत्त्व अशुभ प्रकृति के रूप मे ' पापतत्त्व, ' कर्म आने का निमित्त कारण, ' आश्रव तत्त्व, ' गोप्यभाव, व त्याग द्वारा कर्मों का रुकना ' संवर तत्त्व, ' फल देकर, तथा तप द्वारा कर्मों का अलग होना ' निर्जरा तत्त्व, ' और सम्पूर्ण कर्मों से अलग होकर, आत्मा के स्वरूप में स्थित होजाना ' मोक्ष तत्त्व ' है ।

पुण्य भी नौ प्रकार का माना गया है । जैसे, अन्न, से पानी से, स्थान-बिछौना व वस्त्र देने से, शुभ भावना रखने से, प्रेम युक्त और हितकारी वाक्य कहने से, शुभ

कार्यों में काया की प्रवृत्ति करने से, और हरएक प्राणी के साथ नम्रता पूर्वक व्यवहार करने से, पुण्य होता है।

फिर पाप का होना भी अठारह प्रकार से है जैसे, हिंसा, मृषा, चोरी, कुशीलता, परिग्रह, क्रोध, मान, कपट लोभ, राग, द्वेष, कदाग्रह, कलङ्क, चुगली, परापवाद, रत्यरति (अधर्म से प्रसन्नता और धर्म से नाराजी), माया मृषा (कपट युक्त झूठ व्यवहार), देव-गुरु और धर्म में शुद्ध श्रद्धा का न रखना। प्रत्यक प्राणी इन समस्त पापों से यथा शक्ति बचने की पूरी पूरी कोशिश करे।

पुण्य, आत्मा की पवित्रता का वर्द्धक, और पाप, आत्मा को मलीन करनेवाला मसाला है।

फिर, पुण्य का करना महान् कठिन है और पाप की ओर पैर बढ़ाना सुगम है। पुण्य के फल अच्छे और पाप के फल विषैले और कटुक हैं। पुण्य सुवर्ण के गहने के समान कीमती और उज्ज्वल है, और पाप, लोहे की बेड़ी के समान, जीव को बंधन में डालनेहारा, निकृष्ट और त्यागने योग्य है।

पाप और पुण्य रूप कर्मों के नाश होजाने पर, आत्मा को शिव और अचल अटल ध्रुव-पद प्राप्त होता है।

सम्यक्-दर्शन, आत्मोन्नति का एक विचित्र और अति ही शुभ परिणाम है।

जीवादि पदार्थों का ज्ञान होजाने पर भी, इस सम्यक्त्व-दर्शन की प्राप्ति, किसी विरले ही जीव को होती है, सब को नहीं।

सम, संवेग, निर्वेग, अनुकम्पा, और आस्तिक्य, ये पाच लक्षण सम्यक्त्व के हैं।

जिस आत्मा को सम्यक्-दर्शन क्षण मात्र के लिए भी होजाता है, वह अर्द्ध पुद्गल काल के अन्दर ही अन्दर अवश्य मोक्ष के सुखोपभोग करने का अधिकारी होजाता है।

जीवादि तत्त्वों के एकान्त और बारम्बार का चिन्तवन परमात्म-स्वरूप को जाननेवाले आचार्य-साधु आदि की सेवा, और मिथ्या-दर्शी या कुदर्शनी की असङ्गति का त्याग, येही सम्यक्त्व की प्राप्ति के सरल साधन हैं।

सम्यक्त्व, चारित्र का कारण है। सम्यक्त्व के अभाव म चारित्र की सम्भावना कभी नहीं होती। और इसी सम्यक्त्व के बिना ज्ञान भी मिथ्या ज्ञान कहलाता है।

सम्यक्-ज्ञान का कारण सम्यक्-दर्शन है, और सम्यक्-ज्ञान के अभाव में अहिंसा, आदि गुणों की उत्पत्ति कदापि नहीं होती। फिर, जब अहिंसा आदि गुणों ही का अभाव है, तो कर्मों का नाश नहीं हो सकता, और जब कर्मों का क्षय ही नहीं, तो फिर मुक्ति का मार्ग मिलना तो महान् ही मुश्किल है।

धर्म की आठ प्रभावना को सदा बढ़ाते रहो। श्रद्धा, भक्ति, और सच्चा प्रेम रखते हुए, उन में कभी संदेह का संयोग न होने दो । मिथ्यामत को मिथ्यामत समझो। धर्म-सेवन कर किसी भी फल की इच्छा कभी मत करो।

सम्यक्—दर्शन—प्राप्त पुरुषों की प्रशंसा करके, उन के गुणों की विशेष वृद्धि में सच्चे सहायक बनो। धर्म से जो पतित हो रहे हैं, उन्हें धर्म में पुनः प्रवृत्त करने का, प्राणप्रण से प्रयत्न करो। सहधर्मियों के साथ वात्सल्य-भाव का व्यवहार करो। और अनेकानेक युक्तियों के योग से मिथ्यात्व को मिटाने और वीतराग-धर्म की संस्थापना का भर सक प्रयत्न करो।

पाप कर्मों का परित्याग कर, सदाचरण—शील बनना ही चारित्र कहलाता है।

तप द्वारा आत्मा को तपाने से ही कर्म—मल—का नाश होता है। जैसे, अग्नि के संयोग से सुवर्ण का मैल मिट जाता है।

सम्यक्त्व से तत्त्वानुसन्धान की ओर श्रद्धा होती है, ज्ञान से यथार्थ स्वरूप जाना जाता है, चारित्र बल से नूतन पापों की अभिवृद्धि रुक जाती है, और तप से पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षय होता है।

एक या दो दिन से लगा कर जीवन पर्यन्त अन्न

पानादि का परित्याग करना, रुचि से कम भोजन करना, सत्य—प्रतिज्ञ होना, प्रति—दिन किसी न किसी रस को त्यागना, आसन मारना, केशों का लोचन करना, इन्द्रियों का निग्रह करना, कापायिक द्रव्यों पर विजय—प्राप्त करना पश्चाताप और प्रायश्चित आदि से आत्मा को शुद्ध बनाना, विद्या, वय, तपस्या, आदि गुणों से युक्त बड़े—बूढ़े पुरुष का उचित आदर-सत्कार करना, ज्ञानियों की सेवा करना, आर्ष—ग्रन्थों का पठन—पाठन—मनन और स्वाध्याय करना चित्त को विषय वासनाओं से हटाकर, और उसे एकाग्र बनाते हुए धर्म मार्ग में प्रवृत्त करना और शारीरिक ममत्व और मोह त्यागना, ये अनेक प्रकार की तपस्याएं कहलाती हैं।

ज्ञान पूर्वक तपस्या के करने से, करोड़ो भवों के पापों का भी सहार हो जाता है।

तुम ऐसे कृत्यों को कभी न करो, जिससे महामोह—जनित कर्मों के निकाचित—बन्ध के अधिकारी तुम्हें होना पड़े, और उसके फल स्वरूप, ससार करोड़ाकरोड़ सागर तक, ससार की लाखों योनियों रूप चक्र-फेरी के चक्कर में तुम्हें मारे मारे फिरना पड़े, और जहा धर्म का नाम भी सुनने को न मिले।

हिलते चलते किसी त्रस प्राणी को पानी में डुबो कर कभी न मारो, श्वासोच्छ्वास रोक कर गला कभी न

घोटो, अग्नि के धूएँ से भी उसे घबराकर, प्राण न हरो, किसी भी प्राणी के मस्तक में शस्त्राशस्त्रों का प्रहार कर उसे परिपीड़ित करने का प्रयत्न कभी न करो। आँखों आदि पर चमड़े की पट्टी बाँध कर भी उसके प्राणों का हनन न करो, जो भोला भाला और गूंगा बहिरा है, न तो उसकी मजाक ही कभी करो और न उसे गाली ही तुम दो। अनाचार के किये हुए कामों को कभी भी छिपाने का छलछन्द न करो, अपने पापों को दूसरों के सिर मत मढ़ो, तुम एक न्यायाधीश होकर और न्याय के पवित्र आसन पर बैठ कर, कभी उन शब्दों को अपने मुँह से बाहर न पटको, जिससे न्याय का गला घोटा जाता है। और न्यायासन का अपमान होता हो, किसी भी जीवात्मा के सुख में कभी बाधक मत बनो, सच्चे ब्रह्मचारी बनने का बीड़ा उठाओ, ब्रह्मचारी बनने की झूठी डींगें न हाँको, अपने आश्रय-दाता के बिगाड़ और बैर में कभी मन को न बैठाओ, जिस समाज के सहयोग और सद्व्यापार से, तुमने अपने आप को एक अधिकारी बना पाया है, उसी समाज की शक्तियाँ और अस्तित्व के छिन्न भिन्न करने में, तुम, न कभी दूसरों से मिल कर कोई साजिश ही करो और न कोई ऐसी करतूतें ही करो, कि जिन से तुम्हारा कोई असहयोग ही उस के साथ पाया जाय, दामपत्य-धर्म का निवाहन करते हुए, पति और

पत्नी के बीच विश्वासघात होने के बीज का वपन कभी मत करो, राजा महाराजाओं की घात कभी न चींतो, साधु की साधु वृत्ति का भङ्ग न तो कभी तुम ही करो और न दूसरों ही को करने के लिए उत्साहित कभी करो, सर्वज्ञ परमात्मा की निन्दा कभी मत करो, वीतराग-द्वारा प्रणीत धर्म की तुम कभी अवहेलना न करो, धर्म प्रवर्त्तक आचार्य या उपाध्य की हँसी या निन्दा में कभी भाग न लो, पूरे ज्ञानी बनने की प्रणाली का पथ गहो; निराश्रित को, सामर्थ्य रहते हुए भी आश्रित नहीं देना घोर पाप है, आपस में किसी को लडाने की लत न पकडो, मिथ्याडम्बर फैला कर जगत् को न भरमाओ, संयम का फल अच्छा है, उस की निन्दा न करो, न उस के विषय में तुम्हारी यह धारणा ही हो, कि उस में धरा ही क्या है! अभिमान में आकर मिथ्या-भाषी मत बनो। ये समस्त कर्म महा मोहक और धर्म से च्युत-कर, बुद्धि को बरबाद कर देने वाले हैं। अस्तु। इन से बचने का बल-पूर्वक यत्न करो। संसारियों को येही कर्म रुलाने-वाले हैं।

प्रति समय वैराग्य को बढ़ाने में प्रयत्नशील रहो, विषयों से इन्द्रियों को रोको; कठिन से कठिन समय के आपड़ने पर भी, धर्म के प्रति अपनी प्रगाढ़ निष्ठा को, प्रति दिन बनाये रक्खो।

सधर्मियों की सदा सेवा करते रहो। दुष्कृत्य के

लिए प्रायश्चित्त और पश्चाताप करना सीखो। अपने आप को चाहे बुरा समझते रहो, पर दूसरों को कदापि नहीं। यह अपने प्रति हीनता का भाव, तुम्हारे सम्मान को सर्व प्रिय बना देगा। गुरु-जनों के सामने अपने पापों को छिपाने का विचार जरा भी चित्त में न लाओ।

उचित समय पर, सामायिक व्रत का विधान नियम पूर्वक करते रहो। चारों समयों, अर्थात् प्रात., मध्याह्न, सायंकाल और मध्य-रात्रि में निरन्तर रूप से, चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति जरूर किया करो।

अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मों को कभी भूलो मत। पापों का उचित रूप से प्रायश्चित्त कर, आत्म-शुद्धि के अमूल्य अवसर को कभी हाथ से जाने न दो। क्षमा प्रार्थी बनना सीखो। परस्पर के वैर-भावों को हृदय से समूल खोद फेंको। समय के छोटे से छोटे क्षण को भी ज्ञान की नूतन और लोक-कल्याण कारी खोज के लिए व्यय करना सीखो। शंकाओं का समाधान, ज्यों त्यों कर, दृढ-सकल्पी बनो। स्वधर्म के पथ से भूले हुए पथियों को पुन सीधे रास्ते पर लाने की कोशिश करो। मन को ईश्वर-चिन्तवन, सद्-शास्त्राध्ययन, सद्-संगति रूपी अस्त्र-शस्त्रों से मार कर, उसे एकाग्र करने की भरसक चेष्टा करो।

ऐयाशीपन को छोड़ना ही त्याग की प्रथम मंजिल को पार कर चुकना है। स्वावलम्बी बनो। कभी परायों की

पीठ पर हाथ देकर चलना न सीखो; अर्थात् दूसरों के सहारे जीना कभी मत सीखो। अपने शरीर, शक्ति और सम्पत्ति के गुणानुवाद के गीत गाने ही में मदान्ध मत बने रहो; क्योंकि, जो वस्तु चण भगुर है, वह तुम्हारी हो ही कैसे सकती है। रोगों के आगमन के समय, पथ्य को, उनकी पेश-वाई में रख दिया करो। मृत्यु से न डरो। आत्मा को समाधि में लगाया करो। अपने अनुचित स्वभाव का त्याग कर, बल्ले में गुणों को वहा स्थान दो। बाह्याडम्बरों से बिलकुल अलग रह कर, आन्तरिक आत्मिक शक्तियों को बढाया करो। सेवा धर्म सबसे बडा है, किन्तु महान् कठिन भी, सच्ची सेवा का व्रत तलवार की धार पर चलने के समान है। पदार्थ के यथार्थ रूप को समझ कर समभावी बनो। अन्त करण की शुद्धि करना ही परम शुचिता है। प्रत्येक क्रियाओं को शास्त्रोक्त विधि विधान से करना सीखो।

यदि तुम्हें सचमुच में मोक्ष की इच्छा है तो तुम ससार के सम्पूर्ण विषय-गत व्यापारों से, छत्तीस में के तीन और छ की भांति एक दूसरे से, विमुख बन एक मात्र ज्ञान दृष्टि से आत्म तत्त्व का अनुसन्धान करो। आत्मबोध को प्राप्त करने का पूर्ण प्रयत्न करो। और राग तथा द्वेष येही दो कर्मों के बीज रूप है। अतः तप और त्याग इन दो प्रकार के खादों को, उन बीजों की जड़ों में रोज बरोज

कुछ न कुछ डालते रहा करो। जिससे इन बीजों की जड़, अन्त करण रूपी भूमि में कभी जमने ही न पावे, और जो कुछ हो भी आई हो, वह भी खोखली हो जावे।

शब्दन्द्रिय का विषय है, कर्ण मधुर शब्दों या पदों को सुनकर अपने आप को भूलना। इस इन्द्रिय के व्यापारों के विधान से, बेचारा कुरग, व्याधे के हाथ में पड़ जाता है।

इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु क रूप का ग्रहण चक्षु इन्द्रिय ही क द्वारा हुआ करता है। फिर, इसी एक इन्द्रिय के आधीन बचार कीट पतिगादिक दीपक की लौ पर आसक्त हो, अपने आप को प्राण विसर्जन करने पर उतारू करते हैं। वैसही रूप को देख मोहित होनेवाले मतिमद जीव अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

सुगन्धादिक द्रव्यों का घ्राणेन्द्रिय ग्रहण करती है। इसी घ्राणेन्द्रिय के वश हो, भ्रमर नाश को प्राप्त होते हैं।

रसन्द्रिय, खाद्य पदार्थों का भोग भोगती है। और इसी के वश हो, मछली जाल में फँसकर, अपने प्राणों स हाथ धो बैठती है।

स्पर्शेन्द्रिय का विषय है, शीतोष्णादिक द्रव्यों का अनुभव करना। इसी एक त्वचेन्द्रिय के आधीन हो, मस्त मातग भी, कागज मात्र की हथिनी पर मोहित हो, अपन

[illegible] बड़े भारी खड्ड में, सदा के लिए पराधीनता की [illegible] में जकड़ लेता है।

[illegible] शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श इनके विषम-[illegible] से विमुक्त बनने पर, आत्मा कर्म-बन्धन से भी छूट जाती है।

एक फल-पूर्ण वृक्ष पर जिस प्रकार पक्षी आकर अपना बसेरा बनाता है, वैसे ही, इन्द्रियों के परिपुष्ट होने से 'काम' अपनी प्रबलता दिखलाता है।

काष्ट के संयोग से, जिस प्रकार अग्नि प्रज्वलित हो उठती है, वैसे ही, सरस आहार-विहारों के [illegible] योग से, विचार वायु द्वारा, विषय रूप अग्नि [illegible] पड़ती है।

स्त्रियों से आविष्ठित किसी घर में एक [illegible] ब्रह्मचर्य का बना रहना, ऐसा ही असम्भव है, [illegible] जिस मकान में किसी बिल्ली का वास हो, [illegible]

चिन्तवन करे।

जैसे समुद्र या महासागर के पार करने वाले को, फिर नदी आदि जलाशयों का पार करना कठिन प्रतीत नहीं होता, उसी प्रकार, स्त्री को त्यागन कर देने के पश्चात् अन्य धनादिक, आत्मबोध के बाधक द्रव्यों का त्यागन करना कोई दुष्कर कार्य नहीं है।

शारीरिक और प्रकार की आधि
व्याधियों का मूल भोगों
ही है। और सदृश

जिस प्रकार, बादल, सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश को भी रोक देता है, इसी प्रकार, ज्ञानावरणीयकर्म, आत्मा के ज्ञान गुण को रोकनेवाला है।

सम्यक्-दर्शन को रोकने वाला 'दर्शनावर्णी-कर्म' है। जैसे तेली के कोल्हू के बैल का रास्ता कभी पूरा होता ही नहीं उसी प्रकार, जीव इस कर्म के आधीन हो, अपने संसार का अन्त होते कभी बेचारा देखताही नहीं।

तीसरा वेदनीय-कर्म, है, जिस के वशहो जीव अपने सुख का उसी प्रकार नाश करलेता है, जैसे शहदसे भरी हुई खड्गकी धार जिव्हा पर फिराने से, किंचित् मधुर रस देकर भी अन्त में प्राणान्तक दुखदाई होती है।

जिस प्रकार, मदिरा पीकर जीव बेभान होजाता है, तैसेही 'मोहनीय कर्म' भी आत्मा के सम्यक्त्व गुण का अवरोधक है।

एक चोर का पाव, बन्धन या बेडी से बंधाहुआ, जैसे अपने नियत समय के पहले कदापि नहीं छूटता, वैसे ही आयुष्य-कर्म के आधीन हो, जीव प्राप्त गति ही में रहता है।

एक चित्रकार, जिस तरह, नाना प्रकार के मनेच्छित रूप और रंग के चित्रों का चित्रण करता है, उसी प्रकार, जगत् में, नाना प्रकार के अच्छे और बुरे कर्मों को, 'नाम

चिन्तवन कर।

जैसे समुद्र या महासागर के पार करने वाले को, फिर नदी आदि जलाशयों का पार करना कठिन प्रतीत नहीं होता, उसी प्रकार, स्त्री को त्यागन कर देने के पश्चात् अन्य धनादिक, आत्मबोध के बाधक द्रव्यों का त्यागन करना कोई दुष्कर कार्य नहीं है।

शारीरिक और मानसिक समस्त प्रकार की आधि व्याधियों का मूल-कारण सांसारिक भोगों की भर-मार ही है। और भोग उन फलों के सदृश गुण-कर्ता हैं, कि जो भोग में तो सुख-प्रद और परिणाम में विषैले होते हैं।

राग द्वेष का त्याग कर मध्य मार्ग का अनुसरण करनेवाले बनो। इनके त्यागने पर ही वीतरागी-पद विषयक विशेष विचार कर सकोगे।

कमल पानी ही से पैदा होता है, फिर उसका वास और वृद्धि भी जल ही के आधीन होती है, तब भी वह कमल जैसे सदा जल में रहते हुए भी, उससे अलिप्त ही रहता है, उसी प्रकार ज्ञानी, राग-द्वेष-युक्त पुरुषों के समुदाय में रहते हुए भी, उनसे सदा निर्लेप ही रहा करते हैं।

फिर, कर्म भी आठ प्रकार के कहे जाते हैं वे क्रमशः इस प्रकार हैं --

जिस प्रकार, बादल, सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश को भी रोक देता है, इसी प्रकार, ज्ञानावरणीयकर्म, आत्मा के ज्ञान गुण को रोकनवाला है।

सम्यक्-दर्शन को रोकने वाला ' दर्शनावर्णी-कर्म ' है। जैसे तेली के कोल्हू के बैल का रास्ता कभी पूरा होता ही नहीं उसी प्रकार, जीव इस कर्म के आधीन हो, अपने ससार का अन्त होते कभी बेचारा देखताही नहीं।

तीसरा वेदनीय-कर्म, है, जिस के वशहो जीव अपने सुख का उसी प्रकार नाश करलेता है, जैसे शहदमे भगी हुई खड्गकी धार जिव्हा पर फिराने से, किंचित् मधर रस देकर भी अन्त में प्राणान्तक दुखदाई होती है।

जिस प्रकार, मदिरा पीकर जीव बेभान होजाता है, वैसेही ' मोहनीय कर्म ' भी आत्मा के सम्यक्त्व गुण का अवरोधक है।

एक चोर का पाव, बन्धन या बेडी से बधाहुआ, जैसे अपने नियत समय के पहले कदापि नहीं छूटता, वैसे ही आयुष्य-कर्म के आधीन हो, जीव प्राप्त गति ही में रहता है।

एक चित्रकार, जिस तरह, नाना प्रकार के मनेच्छित रूप और रग के चित्रों का चित्रण करता है, उसी प्रकार, जगत् में, नाना प्रकार के अच्छे और बुरे कर्मो को,

कर्म ' करवाता है।

जैसे, एक कुम्हार, अनेक प्रकार के वर्तनों को, तरह तरह के अलग अलग रंग और रूप देकर, एक ही मिट्टी और एक ही अपने चाक के सहारे से बनाता है, त्योंहो 'गोत्र कर्म' से, नाना प्रकार के ऊँच और नीच गोत्रों में, जीव का जन्म लेकर, जगत् में आना पड़ता है।

एक ड्याढ़ीवान् को अधिकार है, कि वह चाहे, तो राजा से एक आगन्तुक अतिथि की भेंट न होने दे, उसी तरह 'अन्तराय-कर्म' जीव के आत्म-शक्ति सम्बन्धी गुणों को रोकने वाला है।

जो ज्ञानी पुरुषों की निन्दा करते हैं, उनके उपकारों को छिपाते हैं, उनकी शांति में बाधक बनते हैं, उन्हें किसी प्रकार का कष्ट पहुँचाते हैं, उनके साथ द्वेष और झूठ झगड़ों का झञ्झट फैलाते हैं, उस पापी को ज्ञाना वरणीय कर्म का बन्धन होता है। जिससे वह तीस करोडाकरोड सागर तक महा मूढ़ बना रहता है।

वे नर, जो, ज्ञानियों के लिए, ऊपर कहे हुए समस्त कर्मों का, आचरण, यदि दर्शनीयों के साथ करते हैं, तो वे प्राणी 'दर्शनावरणीय कर्म' के बन्धन के भागी होते हैं। और फिर, तीस करोडाकरोड सागर तक वे यह तक भी नहीं जान पाते, कि धर्म कहते किसे हैं। अत एसे

कर्मों से डरो।

प्राण, भूत, जीव, और सत्त्व, इन चारों प्रकार के प्राणियों में से किसी को भी कभी दुःख मत दो, झुराओ मत, शोक परिताप उन्हें हो, ऐसा न करो। यों करते हुए, तुम 'साता वेदनीय–कर्म–बन्धन' के स्थायी अधिकारी हो जाओगे। अर्थात् वे करोड़ों सागर तक शान्ति और सुख पावेंगे। और जो इसके प्रतिकूल आचरण करते हैं, वे 'असाता–वेदनीय–कर्म बन्धन' के अधिकारी होते हैं। अर्थात् वे करोड़ों सागर तक दुख और परिताप से प्रपीड़ित रहेंगे।

तीव्र क्रोध, मान, माया, लोभ, राग और द्वेष इन कारणों से 'मोहनीय कर्म' का बधन होता है। *

जो नम्रता से युक्त हो–मधुर-भाषी हो, विषम–वादी न हो, वह 'शुभनाम कर्म' के बन्धन का अधिकारी होता है, और जिससे बीस करोड़ाकरोड़ सागर तक, जगत् में उसके यशकीर्ति का गान होता रहता है, और उसका आताप प्रताप बढ़ता है। जो उपर्युक्त गुणों से रहित होता है, अर्थात् जो घमण्डी, कटुवादी, मलीन–भावापन्न और विषमवादी होता है, वह 'अशुभ नाम कर्म' बधन को भोगता है, और बीस करोड़ाकरोड़ सागर तक, जगत् में उसकी अप-

* 'आयुष्य कर्म' का बन्धन, कारण, तथा स्थिति का वर्णन पहले हो चुका है।

जो आर्त-रौद्रादि ध्यान से रहित, धर्म-शुक्ल ध्यान में लीन, राग-द्वेष का घटाने वाला, आत्मावलम्बी, सराग, वीतराग संयमी, इन गुणों से युक्त पुरुष को शुक्ल लेशी, मानो।

इन छहों लेशाएँ, तथा द्रव्य, भाव और प्रकृत्यादि से आत्मा के परिणाम पहचाने जाते हैं। शरीरान्त होते समय, जीवात्मा की जो जैसी लेशा होती है, तदनुसार ही स्थान पर, उसका गमन होता है।

प्रथम की तीन लेशावाले जीव अधोगति को प्राप्त होते हैं। और अन्त की तीन लेशावाले सद्गति को पाते हैं। इसलिए, पहले की तीनों अधम लेशाओं का परित्याग करो।

जो आत्माएं इस मनुष्य लोक में अहिंसा, सत्य, दृढ़ शील, सन्तोष, दान, पुण्य, परोपकारादि सत्कर्म करती हैं, वे मिट्टी के कच्चे घट के समान, महा दुर्गन्धवाले नश्वर नर-देह को परित्याग कर, स्वर्ग को प्रस्थान करती हैं।

स्वर्ग में प्रयाण कर, वे आत्माएँ, वहां परम पवित्र दिव्य और अतीव सुंदराकार प्रकाशमान शरीर को धारण करती हैं। वह शरीर हाड, मांस, लोहू, और स्नायुओं करके रहित होता है। फिर वह शरीर, सतत प्रौढ यौवन-युक्त-अतीव उन्नत, बल वीर्य और पौरुष सम्पन्न,

तथा पराक्रमवान होता है। जिसमें दोनों हाथों और पैरों के तलुवे एव तालू, जिव्हा, ओष्ठ और नाखून ये सम्पूर्ण अङ्ग अरुण वर्ण से युक्त तथा बडे ही सुकोमल होते है। उस शरीर में अग अग की छवि ही कुछ निराली होती है। मुक्तावली के समान उज्ज्वल, स्निग्ध और चारु चमकीले दशन, जिसके मुखकी आभा को आभासित करते हैं, शरद पूर्णिमाके उत्फुल्ल इन्दु के समान, जिसके चहरे से शान्ति तथा गाम्भीर्य के भाव मानों टपके पड रहे हैं, और जो गुलाई लिए है। जिस में ललाट का लावण्य तो कुछ और ही निराला होता है, वह अपने उन्नतपन और चमक-दमक से मानो अर्द्ध चन्द्र को चका चौंध करता रहता है, कान का मकराकार मन को और भी मोहे लेता है, विशाल वक्ष स्थल प्रफुलित वदन रूपी विकसे हुए कमल पर, खिले हुए और चलते हुए चारु चक्षु मडराते हुए भौंरोंकी भव्यता का दर्शन कराती हैं, इन्हीं चारु चचल चक्षुओं के ऊपर भौंह-धनुप अपने नुकीले और टेढे पन से दर्शकों को देखते ही बन आता है। इस प्रकार, स्वर्ग में उस शरीर की अङ्ग अग की एक विचित्र आभा होती है। स्वर्ग में रहने वाली उन आत्माओं के लिए भवन भी बड़े मन-मोहन, सर्व प्रकार की सामग्रियों से युक्त और पूरे सुख के सदन होते हैं। उनमें कई प्रकार के मणि माणिक जडे रहते है और वे तरह तरह के अनुपम

चित्रों मे चित्रित रहत ह। इस तरह, वहा विमानों की बै ठक, सारे सार पदार्थों का पान, अनुपमेय सुन्दरता की मदन अप्सराओं का गम्भीर गान, और नदन वन की सैर व अमर आत्माएँ करती हुई नाना प्रकार से अपने पुण्यों का सुखोपभोग, हजारों-लाखों वर्ष एव कई सागर तक भोगती रहती हैं। स्वर्ग में उन देवत्व प्राप्त आत्माओं की शय्याएँ कभी मैली नहीं होती ह, और वे सदा फूलों से सजाई हुई, मखमल को भी मात करनेवाली कान्त और कोमल होती हैं। वहा के सदन सदा एक से और सहस्रों दिन मणि के प्रकाश के समान प्रकाशमान् रहते हैं। फिर वह प्रकाश भी शीतल और बड़ाही सुख दायक प्रतीत होता है। वहा सदा दिनसा ही बना रहता है, फिर, नर जैसे जैसे उत्तम-उत्तमतर और उत्तमतम कर्म करके मनुष्य लोक से स्वर्ग में सिधारता है,उनके सुख और वैभव की विशेषता भी उत्तरोत्तर वैसीही अधिक होती है। वहा, देव देहों का जब अन्त होता है, तब वे देहें केवल कपूर की भांति बिखर जाती हैं। प्रत्येक देवके भुवन-भासमान उपवनों में छहों ऋतुओं का, एक साथ और प्रत्येक समय, सयोग रहता है। उन उपवनों के पादपपुन, सदा सैकड़ों तरह के स्वर्गीय फल-फूलों से लदे रहते हैं। यहा के देव-देह-धारियों को कभी कमाने की कोई चिन्ता नहीं रहती। वे, भूख लगने पर सर्वोत्कृष्ट एव स्वादिष्ट उत्तम पदार्थों का

सार सार अपने उपभोग में लाते है । उन उपवनों की शीतल-मन्द और परम सुगन्धित-परिमल मिश्रित वायु का, सदा सेवन कर, वे आनन्दकी ललित लहरी में उद्वेलित होत रहते हैं। वहा उन पुण्यशाली आत्माओं की सेवा-शुश्रूषा में, अनेकों चाकर, देव-देवी (जो छोटे पदाधिकारी होते है) प्रति समय हाथ बाधे खड़े रहते है । बत्तीस प्रकार के नाटक-गान-नृत्य आदि वे, देव-देवी उन के सामने करते हैं। उस समय में, वे मालिक देव उन्हें अवलोकन करते हुए फूले अग नहीं समाते हैं । एसे उत्तम लोकों में, महा- भागा पुण्यशाली आत्माएँ ही जा सकती हैं, अन्य नहीं। स्वर्गीय आत्मा कम से कम दस सहस्त्र वर्षों तक, और अधिक से अधिक तैतीस सागरोपम पर्यन्त, स्वर्ग में, सुख चैन से स्थित रह सकती हैं।

जो आत्माएँ, सकल कर्मों, एव शारीरिक, व मानसिक आधि व्याधि और उपाधि, आदि सभी से वञ्चित होजाती हैं, वे मुक्त अवस्था को प्राप्त होजाते हैं। उस अवस्था में, वे, सम्पूर्ण प्रकार के गत्यागत्य से निर्विकार रहती है। क्योंकि, गत्यागत्य का प्रधान कारण, शुभाशुभ कर्म ही होत हैं। उन शुभाशुभ कर्मों को तप-जप आदि साधनों के द्वारा, समूल नष्ट कर चुकने पर ही आत्मा, मुक्ति के अमरत्व का आनन्द भोगती है । जैसे, बीज दग्ध होने पर अकुर नहीं देता । उसी तरह, शुभाशुभ

कर्म रूप बीज का नाश हो जाने पर, जन्म मरण-रूप अकुर की उत्पत्ति भी नहीं होती । कर्म रूप बंधन से छूटते ही, आत्मा की ज्योति ज्योति स्वरूप ब्रह्म में मिल जाती है । आत्मा के इस दिव्य स्वरूप को 'सिद्धात्मा' कहा जाता है । ये अनन्त और अनादि हैं । ये समस्त सिद्धात्माएँ ज्योति स्वरूप भाव से या तो एक ही हैं, पर पृथक् पृथक् भावसे अनेक भी हैं । इन परम पवित्र सिद्धात्माओं के अन्दर, काला नीला-पीला-रक्त-और श्वेत, इन पाचों वर्णों में से कोई एक भी वर्ण नहीं है । फिर, वह परमात्मा न तो दुर्गन्ध युक्त ही है, और न सुगन्ध से ही किसी प्रकार वह सना हुआ है । वह परमात्मा, खट्टा-मीठा-चिरपरा-खारा-कड़वा और कसैला इन षट् रसों से भी विरक्त है । वह न हलका ही है, न भारी ही है । वह शीत, उष्ण, स्पर्श, आदि इन्द्रियों के विषयों से निरा अलग है । फिर, जितनी भी सिद्धात्मा एँ हैं, वे न तो परिमण्डल या सस्थानवाली ही हैं, न उन का वट ही संस्थान है, और न त्रिरुम (त्रि-कोनक श्रृगाटक के आकार वाला) संस्थान ही में वे रहती हैं, और न चौरस या किसी आयतन सँस्थानवाली ही वे सिद्धात्माएँ हैं । वे तो निरञ्जन, निराकार, निरीह, निरावलम्ब और निर्विकार हैं । भव प्रपञ्च अब उन से भय मान भाग पड़ा है । वे अनन्त ज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्त शक्ति और अनन्त निराबाद सुख, इन अनन्त चतुष्टय कर युक्त हैं ।

व आत्माएँ तो पूर्ण हैं, अखण्ड हैं, अविनाशी है, सच्चिदानन्द-रूप हैं, निजानन्द युत हैं, निरावलम्ब, अरूप, अनाम अकाम, अलेशी और सम्पूर्ण प्रकार के उपद्रवों से रहित भी वे ही हैं, उपमा-रहित और सप्त-धातु-सवरणों से वे हीन हैं। उन्हें, यदि कोई मन्त्रों के आव्हान द्वारा, बुलाना चाहे तो वे नहीं आ सकतीं, क्योंकि सिद्ध-पद-प्राप्त आत्माओं की पुनरावृत्ति कभी होती ही नहीं है। उन के सुखों के अनुभव को जानने में केवल वे ही समर्थ हो सकते हैं, जो पूर्ण ज्ञानी होते हैं। उन के सुखों की उपमा का उपमान पदार्थ, इस जगती तल में कोई है ही नहीं, कि जिस के साथ उन की तुलना की जा सके। उस सिद्ध स्थान में, न तो किसी जन्म ही का बन्धन है, और न जरा तथा मरण ही से वह स्थान सयुक्त है। न उन सिद्धात्माओं पर, तथा उनके निज स्वरूपाचरण में मौत की कोई कभी ममता ही हो सकती है। वे तो दिव्यात्माएँ हैं। उन के परम धाम को, न तो कोई सूरज ही प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्र ही की चमक का वहा कोई च घर है।

फिर, वे सिद्धात्माएँ तो परमेश्वर, शुद्ध, बुद्ध, परम पारंगत, मुक्त,सच्चिदानन्द, अजन्म, अमर, अयोनि, अमूर्त, अविनाशी, निष्कलङ्क, सर्वज्ञ, सर्व-दर्शी, अनन्त शक्तिमान्, अखण्ड, अचल, शिव अक्षय,अनाम, अरूप, अरुज, सतत

आनन्द स्वरूप और परमात्म-पद से अलङ्कृत हैं।

पाठको! भगवान् का यह दिव्य सन्देश, भव-सागर की महान् तरङ्गायमान त्रैताप तरङ्गों में, 'इनतेहुओं को तिनके का सहारा' का चरितार्थ करने वाला सिद्ध हो। और इसी दिव्य सन्देश का अहर्निशि विचार करते हुए तुम यहां से परलोक का पासपोर्ट कटाने के पहले ही पहले, स्वेच्छा और स्वतन्त्रता-पूर्वक, अपने गन्तव्य स्थान का पता लगा लो, ताकि एक दिन तुम्हें वहां अनिका पश्चाताप न हो। अस्तु। पाठको! भगवान् के इस दिव्य सन्देश को यथा साध्य और यथा शक्ति, घर घर और दर दर प्रत्येक प्राणी के हाथों पहुचाने का तुम प्रण करो, फिर निशि दिन के निरन्तर विचारों और मनन द्वारा, इस देव दुर्लभ नर देह को, नारकीय सन्तापों से बचाकर मोक्ष के अक्षय सुखों की प्राप्ति के लिए भरसक प्रयत्न करो।

॥ ॐ ॥ शान्ति ! शान्ति ! ! शान्ति !!!

———